शिव-और-शिवार्च्चनतत्त्व।

प्रथम भाग।

शिवरात्रि।

Q 23:2291'9'
SHI
1848 Sqm.

परमाराध्यपद—श्रीश्री-भार्गव-शिवराम किङ्कर

योगत्रयानन्दजीके

शिव-और-शिवार्च्चनतत्त्व

विषयक उपदेश।

प्रथम भाग।

शिवरात्रि।

प्रथम खण्ड।

श्रीनन्दकिशोर मुखोपाध्याय, विद्यानन्द, वि, एल,

द्वारा प्रकाशित।

उत्तरपाड़ा (हुगली)।

मू० २००/-

शकाब्दा १८४८] *All Rights Reserved.* [

ग्रन्थ मिलनेका स्थान
उत्सव आफिस
१६२, बहुबाजार स्ट्रीट,
कलकत्ता।

923.2271
SHT

Printed by—
LALIT MOHAN ROY,
at the LALIT PRESS.
8 Ghosh Lane, CALCUTTA.

शिवरात्रि ।

प्रथम खण्ड ।

विषयानुक्रमणिका

प्रस्तावना ।

धर्म्म और विज्ञान ।———

आर्य्यशास्त्रप्रदीपकी उपक्रमणिकामें वर्णित धर्म्म, विज्ञान, "रिलिजन्' आदिका संक्षिप्त विवरण; श्रुति तथा श्रुतिमूलक शास्त्रोंमें 'धर्म्म' शब्द इस शब्दके साधारणतः ज्ञात अर्थसे व्यापकतर अर्थमें प्रयुक्त हुआ है; केवल वेदादि शास्त्रोंहीमें धर्म्मका पूर्ण लक्षण प्रदत्त हुआ है। जो वेदज्ञ हैं और वेदबोधित धर्म्मके अनुष्ठाता हैं, वही यथार्थमें धार्म्मिक हैं; धर्म्म और 'रिलिजन्' सर्वांशमें समान पदार्थ नहीं हैं। समुद्रके साथ नदीका जो सम्बन्ध है, धर्म्मके साथ 'रिलिजन्का' भी वही सम्बन्ध है। वैशेषिकदर्शनोक्त धर्म्मका लक्षण, प्रकृत विज्ञान-धर्म्मसे भिन्न पदार्थ नहीं है; भूत और शक्तिविषयक सम्यक् ज्ञान धार्म्मिकके लिये कदापि उपेक्षणीय नहीं है; सत्य ही वेदबोधित धर्म्मका स्वरूप है।

यथार्थ विज्ञान ईश्वर तथा ईश्वरोपासनाको त्याग नहीं सकता ।———

यथार्थ वैज्ञानिकके सभी कर्म्म ईश्वरोपासनाके सिवाय और कुछ हो नहीं सकते। अज्ञान वा अल्पज्ञ पूर्ण विज्ञानको, अथवा विशुद्ध ज्ञानको देख नहीं पाता ; अल्पज्ञ ही अकृतज्ञ होता है और अकृतज्ञ ही ईश्वरविमुख हुआ करता है।······················५-६

यथार्थ विज्ञान और प्रकृत वैज्ञानिकके लक्षण ।———

"विज्ञान' शब्दका अर्थ ; अङ्गरेज़ी 'सायेन्स्' (Science) शब्दका अर्थ, जर्म्मन्देशीय अध्यापक हेकेल्वर्णित विज्ञानका स्वरूप, पाश्चात्यविज्ञानशास्त्रमें विज्ञानको जो लक्षण वर्णित हुए हैं ; विशुद्ध ज्ञानकी प्राप्तिमें विचारकी एकान्त प्रयोजनीयता।

केवल इन्द्रियगम्य पदार्थ ही ज्ञानके विषय नहीं हैं,केवल चक्षुरादि इन्द्रियगण ही ज्ञानकरण नहीं हैं। पातञ्जलोक्त योगज प्रज्ञा वा ऋतम्भरा प्रज्ञा ही यथार्थ विज्ञान है। स्थूल प्रत्यक्ष और तन्मूलक अनुमान प्रमाण द्वारा अतीन्द्रिय 'ईश्वर' पदार्थकी सिद्धि हो नहीं सकती ; अतीन्द्रिय पदार्थोका ज्ञान केवल शास्त्र वा आप्तोपदेशसे ही हो सकता है। वैज्ञानिकोंके बीच भी ईश्वरके अस्तित्व पर विश्वास करनेवाले पुरुष थे और हैं भी। जगत्का विश्लेष करनेसे प्रकाशशील सत्व, क्रियाशील रजः और स्थितिशील तमः यह त्रिगुणात्मिका प्रकृति और चिन्मय पुरुष ये दो पदार्थ मिलते हैं। विज्ञान त्रिगुणात्मिका प्रकृतिकी प्रयोजनोपयोगि-स्तुतिसे पूर्ण है। वेद ही विशुद्ध वा यथार्थ विज्ञान है। अनुवीक्षण-दूरवीक्षणादि यन्त्रों द्वारा

अदृश्य पदार्थोंके सन्दर्शनका वेद ही एक मात्र दर्शन हैं। शास्त्रोक्तलक्षणविशिष्ट आप्तोपदेश ही ज्ञान-विज्ञानकी मूल प्रसूति हैं ; तर्क-विचार (Reason), दर्शन, परीक्षा (Observation, Experiment) ये मूलतः आप्तोपदेश ही का आश्रय कर रहते हैं। स्थूल वाह्य विषयक समाधिसे ही जड़विज्ञानका आविर्भाव हुआ है और हो रहा है ; विना योगके किसी पुरुषार्थकी सिद्धि नहीं होती। विना ईश्वरके अनुग्रहके ईश्वर-विश्वास या ईश्वरानुराग हो नहीं सकता। ईश्वरविमुख नास्तिक भी स्थूल भावसे ईश्वरका अस्तित्व माना करते हैं, ईश्वरकी उपासना किया करते हैं ; बिना ईश्वरकी उपासना किये हुए कोई जगत्में रह नहीं सकता; उपास्यके साथ उपासकके सम्मिलित होनेकी चेष्टा ही जगत्का जगत्व है। ईश्वर जगत्से अभिन्न हैं इस बातका तात्पर्य्य ; ईश्वरके षाड्गुण्यकी बात। ईश्वरको निर्गुण क्यों कहा जाता है ? मनुष्य प्रकृतिके पास ही प्राकृतिक विज्ञान सीखा करता है ; प्रकृतिसे ही प्रकृतिका इतिहास सुना करता है, अथवा मनुष्य ईश्वर-वा कालके पास ही प्राकृतिक इतिहास जाना करता हैं, सर्व्वज्ञ एवं नित्य ईश्वरसे ही ब्रह्मादि गुरु-परम्पराक्रमसे जगत्में निखिल ज्ञान विज्ञानका प्रचार होता है। सर्व्वज्ञ ईश्वरका ज्ञान ही 'वेद' शब्दका यथार्थ अर्थ है। शक्तिसे शक्तिमान् भिन्न नहीं हैं। अतः ईश्वर, काल और प्रकृतिसे वेद भी अभिन्न पदार्थ हैं। प्रकृत विज्ञान और यथार्थ वैज्ञानिक वास्तवमें ईश्वर वा प्रकृतिकी उपासना किया करते हैं। धर्म्म विश्वजगत्की प्रतिष्ठा है।

योग द्वारा आत्मदर्शन, ईश्वर-साक्षात्कार—यही परम धर्म्म है। अन्तर्मुखा और बहिर्मुखा जगत्‌की ये द्विविध गति हैं ; बाहर-से केन्द्रकी तरफ़ जाना ही 'ईश्वरोपासना वा 'योग' है। ईश्वरोपासना वा योग मनुष्यका स्वाभाविक धर्म्म है। जो गति जितनी केन्द्राभिमुखा होती है, वह उतनी ही उत्कृष्ट होती हैं ; श्रुतिने इस गतिको 'प्रेति' (प्रकृष्ट गति) वा धर्म्म बताया है।·········९-२६

'शिवरात्रि नामक ग्रन्थका प्रयोजन।——

अविकृत वैदिक आर्य्यसन्तानोंके बीच सभी शिवरात्रि व्रत किया करते हैं, पर वर्त्तमान कालमें बहुतेरे ही उपासना और उपास्यका विज्ञान नहीं जानते। शिवरात्रिमें उपवास करते हैं ; रात्रि-जागरण करते हैं, शिवजीकी पूजा करते हैं ; पर क्यों करते हैं, शिव कौन हैं, शिवरात्रि क्या है ; पूजा किसे कहते हैं ; किस तरह पूजा करनी होती है सो बहुतेरे ही यथार्थरूपसे जानते नहीं हैं। उपासना सर्व्वप्रकार उन्नतिका एकमात्र साधन है ; अतः जिससे यथार्थरूपसे उपासना हो सके,उसे जाननेके लिये आत्म-कल्याणार्थीकी चेष्टा होनी चाहिये। 'शिवरात्रि' में प्रागुक्त विषयोंपर उपदेश दिये गये हैं ... ... २६—२९

प्रथम परिच्छेद।

'शिवरात्रि क्या है और किस तरह यथार्थरूपसे शिवरात्रिव्रत किया जा सकता है, इत्यादि विषयोंपर प्रश्न।——

क्या कारण है, कि शिवरात्रि-व्रत करनेसे शिवजी विशेषतः

सन्तुष्ट होते हैं? शिवचतुर्द्दशीमें उपवास और रात्रिजागरण करनेसे आशुतोष क्यों प्रसन्न होते हैं? किस तरह शिव-पूजा की जाती हैं? क्यों :यथार्थरूपसे ध्यान करनेसे शिवजीके दर्शन मिलते हैं?' उत्तर—शिवजीको देखनेकी प्रबल इच्छा होनेहीसे उनके दर्शन मिलते हैं; भक्तके पुकारनेसे वह उत्तर देते हैं, उनके दर्शनकी प्रार्थना करनेसे वह दर्शन देते हैं। पर, इसलिये शिव कौन् हैं सो जानना चाहिये, शिव तुम्हारे कौन् हैं इसका निर्णय कर लेना चाहिये। शिव सर्व्वशक्तिमान् हैं, वह सब कर सकते हैं, वे भक्ताधीन हैं, वह प्रेमपारावार हैं, वह करुणावरुणालय हैं हृदयमें ऐसा अचल विश्वास रहना चाहिये। शिवजी सभीके शिवजी हैं यह सत्य है, फिर भी शिवजी भक्ताधीन हैं, यह भी सत्य है।... ...२०—२६

द्वितीय परिच्छेद।

'शिव' कौन् हैं 'इस प्रश्नका उत्तर। शिव' शब्दका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ जिनमें सब कोई शयन करते हैं, वह'शिव' हैं 'शिव' शब्दके इस अर्थका तात्पर्य्य यह है, कि भक्ति ही भगवान्को देखनेका सबसे सुलभ साधन है। 'शम्भव', 'मयोभव', 'शङ्कर', 'मयस्कर', 'शिव' 'शिवतर' इन शब्दोंके अर्थ। संसारमें आस्तिक और नास्तिक

बराबरसे हैं और रहेंगे भी बराबरके लिये ।———

चिन्तन करना किसे कहते हैं, कैसे चिन्तन किया जाता है। कार्य्यमात्र ही किसी आधारमें धृत होकर रहता है, इस बातका तात्पर्य्य । कार्य्यमात्रकी स्थूल और सूक्ष्म ये द्विविध अवस्थायें हैं। आधारशक्तिका स्वरूप। आकाशनामक पदार्थका स्वरूप। एक-एक साधु शब्दही एक-एक पूर्ण विज्ञान है। छान्दोग्योपनिषत् और बृहदारण्यकोपनिषद्में व्यवहृत 'आकाश' शब्दका अर्थ, ऋग्वेदोक्त 'परम व्योम' शब्दका और अथर्व्ववेदोक्त 'अव्याकृत सूत्र' शब्दका अर्थ।

अन्तःकरणकी शुद्धि ही भगवान्को जाननेका या उनको पानेका मुख्य साधन है। भक्तिका साधन क्या है, इस प्रश्नका उत्तर।

जो सांसारिकसुखदाता हैं,जो दारिद्र्य, रोग आदि सांसारिक बाधाओंको हटा देते हैं और जो ज्ञान और भक्ति देकर संसारसे मुक्त करते हैं, अपरिच्छिन्न वा नित्यसुखसे सुखी करते हैं, त्रिविध दुःखकी अत्यन्तनिवृत्ति कर देते हैं, वह 'शिव' हैं, वह 'शम्भु' हैं, वह 'शङ्कर' हैं; वह 'मयोभव' हैं; वह 'मयस्कर' हैं,—इन बातोंकी तात्पर्य्यव्याख्या। 'शास्त्र झूठ नहीं बोल सकते' जिज्ञासुका इस प्रकार विश्वास होनेका कारण। 'वेद','सत्य', 'ब्रह्म','भगवान्' ये एक पदार्थ हैं। आस्तिक और नास्तिक ये दोनों बराबरसे हैं; और रहेंगे भी बराबरके लिये। कर्म्म अनादि है, कर्म्मभूमि भी अनादि है, जगत्की सृष्टि, स्थिति औब लय पवाहरूपसे द्रित्य हैं। संसारमें पर्य्यायक्रमसे उन्नतिके बाद अवनति हुआ करती है।

गुणकर्म्मके विभागानुसार सभी भावोंके आविर्भाव और तिरोभाव हुआ करते हैं। देशके भेदसे, जातिके भेदसे, व्यक्तिके भेदसे बुद्धि, विश्वास, धर्म्म, अधर्म्म आदिका भेद हुआ करता है।...३७—५७

तृतीय परिच्छेद।

शिव ही वस्तुतः कल्याणमय हैं, सुखमय हैं, दयामय हैं, सर्व्वशक्तिमान् हैं, शिव ही रोगार्त्तके भिषक् हैं, वे ही भवरोगवैद्य हैं, वे ही अकिञ्चनके सर्व्वस्व हैं और वे ही दरिद्रके नित्य कोषागार हैं। विचारके सम्बन्धमें दो एक बात।———

अन्नपूर्णा उपनिषद्में, पद्मपुराणमें योगवाशिष्ठ रामायणमें विचारकी बहुत प्रशंसा और विचारविहीनकी अत्यन्त निन्दा देखी जाती है। विचार ही साधुओंकी गति है,सिवाय विचारके विद्वानोंका और कोई उपाय नहीं है; विचार द्वारा ही धीमानोंके बल,बुद्धि, तेज, आदि सफल होते हैं; क्या युक्त है, क्या अयुक्त है, क्या सत्य है, क्या मिथ्या है, इनका निर्णय करनेके लिये विचार महादीपस्वरूप है। यथोचित विचार शक्तिके अभावके कारणसे ही मनुष्य शिवका स्वरूप जान नहीं सकता। नास्तिकोंने भी विचारकी एकान्त प्रयोजनीयता स्वीकार की है। वेदसे ही विचारशक्तिका स्फुरण तथा प्रसारण हुआ करता है, वेद ही विचारशक्तिके केन्द्रभवन हैं। वेद विश्वकी प्राणशक्ति हैं, वेद ही विश्वके मन वा हिरण्यगर्भ हैं।

इच्छाशक्ति ही सर्व्वप्रकारसे स्थूलशक्तिका मूल है, विचारशक्ति ही आन्तर और वाह्य जगत्‌की आद्यशक्ति है। शब्द वा ब्रह्मसे विश्वजगत्‌की सृष्टि हुई है, देवतालोग भी शब्द वा वेद प्रसूत हैं। जिस प्राकृतिक नियमानुसार स्थूल भेषज द्वारा रोगशान्ति हुआ करती है, मन्त्रजप, स्तवपाठ इत्यादि द्वारा भी उसी प्राकृतिक नियमोंके अनुसार साधारण चिकित्सकों द्वारा असाध्य जान परित्यक्त रोगी निरामय होता है, शान्ति लाभ करता है। चित्ताकाशमें लग्न शब्द संस्कारसे विचारशक्तिके स्फुरणकी बात ; वेद वा शिवजीकी कृपासे दुर्व्वोध्य उपदेशोंका तात्पर्य्य समझनेकी शक्तिके आविर्भावकी बात ; किस हालतमें उपदेष्टाकी वाणी अभीष्ट फलदान करनेमें समर्थ होती है।

विचार वेदमूलक है ; वेद ही विश्वकी प्राणशक्ति हैं ; निखिल शब्द विचारपर हैं ; ज्ञान-विज्ञानपारदर्शी, विश्वके परमबन्धु महर्षिगण प्राण वा वेदस्वरूप हैं। शिवजी ही कृषिकार्य्यादि द्वारा धनलाभके उपायोंके मूल कारण हैं, इस बातकी उपलब्धि करनेका उपाय ; शिवही निखिल विद्या और शिल्पकी मूल प्रसूति हैं, शिव ही वेद वा शब्दरूपसे सर्व्वविद्याके, अखिल शिल्प-कलाके आद्युपदेष्टा हैं। चतुःषष्ठिकलायुक्त सारी विद्या जगन्माता सर्व्वेश्वरी शिवा वा दुर्गाका ही अंश है, शिवा वा दुर्गा ही बुद्धि (निश्चयात्मक ज्ञान) रूपसे सभोंके हृदयमें निवास करती हैं ; अतः जो विद्या तथा शिल्पादि धनप्राप्तिके उपाय समझे जाते हैं, उनके शिव ही मूल कारण हैं। शिव वा शिवाका अनुग्रह ही सर्व्वप्रकार कार्य्यसिद्धिका मूल

कारण है ; 'क्या मनुष्य कर्म न करनेपर भी शिवजी उसको धनादि देते हैं ?' इस प्रश्नका उत्तर। 'शिवजी दरिद्रके अक्षय नित्य कोषागार हैं, शिवजी व्याधिकी यातना निवारण करते हैं,' सर्व्व दुःख हरण करते हैं, सर्व्वसुख प्रदान करते हैं, जिससे इन बातोंका अर्थ समझमें आ सकता है तद्विषयक उपदेश। 'शव' से 'शिव' हुए हैं इस बातका अर्थ ; कोई यथार्थरूपसे 'शव' हो सकनेसे 'शिव' हो सकता है।... ... ... ५८—८३

शिवके अनुग्रहसे ही जीव कृतकृत्य होता है, सब छोड़कर सर्व्वान्तःकरणसे शिवका शरणागत हो सकने हीसे जीवका सारा दुःख मिट जाता है। सब काम छोड़कर शिवका (ईश्वरका) शरणागत होना ही प्रकृत पुरुषकार है, यह कापुरुषता नहीं है, स्थूल दृष्टिमें यह न्यायविरुद्ध होनेपर भी सूक्ष्मदृष्टिमें यह पूर्णः न्यायसङ्गत है।

'अगर भगवान्‌का शरीर विभु—सर्व्वव्यापी है, तो फिर वैकुण्ठादि स्थानविशेषको भगवान्‌का आवासस्थान क्यों कहा जाता है ?' इस प्रश्नका उत्तर। भगवान जिस प्रकारसे भक्तोंके लिये नाना रूप धारण करते हैं ; मायाका स्वरूप; माया वा प्रकृति ईश्वरसे अभिन्न हैं, इस बातका अभिप्राय। ईश्वर और प्रकृति ये दोनोंही जगत्‌कार्य्यके कारण हैं। ईश्वरका अस्तित्व माननेका प्रयोजन ; प्रकृति और पुरुष स्वरूपसम्बन्धमें परस्पर सम्बद्ध हैं, इस बातका अर्थ; 'क्या शिवा, उमा वा गौरी जड़शक्ति है ?' इस प्रश्नका समाधान; शिवाका स्वरूप; शिवका शरणागत होना ही श्रेष्ठ पुरुष-

कार हैं ; निरन्तर शिवके अनुस्मरणादि द्वारा किस तरहसे सर्व्वज्ञत्वादिकी प्राप्ति होती है इसका; विवरण पुरुषकार और मनका स्वरूप; भावनाकी विशुद्धिके मात्रानुसार कर्म्मकी सिद्धि हुआ करती है ; शिवा-वा-शक्तियुक्त शिव ही वस्तुतः सर्व्वशक्तिकी मूल प्रसूति हैं ; शिव ही पुरुषश्रेष्ठ हैं, शिव ही सर्व्वपुरुषके मूल हैं, अतः एकाग्रचित्त हो 'शिवका ध्यान करने हीसे 'प्रकृत पुरुषकार' होता हैं। जिनका कोई प्रयोजन नहीं, जो पूर्ण हैं, जो निष्काम हैं, उनकी किसी कर्म्मके करनेकी प्रवृत्ति क्यों होगी ?' इस प्रश्नकी मीमांसा। 'क्या ईश्वर अग्निवायुसूर्य्यादिरूपसे आविर्भूत न होकर भी लोगोंका कर्म्मसाधन कर नहीं सकते ?' इस शङ्काका समाधान। ईश्वर नित्य निराकार और नित्य साकार हैं। 'अगर जीव कर्म्म न करे, तो, ईश्वर उसको फल देते हैं या नहीं ?' इस प्रश्नका संक्षिप्त उत्तर। प्रश्न ;— जीवोंका उपकार करनेके लिये, जगत्की सृष्टि करनेके लिये, ईश्वरको बाहरकी चीजोंका संग्रह करना पड़ता है या नहीं ? उत्तर— नहीं, ईश्वर वाह्य साधनकी अपेक्षा न कर अपने ही से सब कुछ कर सकते हैं। ....८३—११०

चतुर्थ परिच्छेद।

शिवजीके स्वरूपके सम्बन्धमें जिज्ञासुकी जैसी धारणा हुई है। ११०—११७

पञ्चम परिच्छेद ।

रात्रि कौनसा पदार्थ है ? वेदमें 'रात्रि' शब्दका प्रयोग । रात्रिसूक्तके प्रथम मन्त्रकी व्याख्या ।

'रात्रि' शब्दकी निरुक्ति और पर्य्याय ; जीवरात्रि और ईश्वर-रात्रिकी बात ; परमेश्वरका भी लय होता है, इस बातका अभिप्राय, रात्रिसूक्तमें संक्षेपमें विश्वकी सृष्टि, स्थिति और प्रलयतत्व व्याख्यात हुआ है । विश्वजगत्‌की वेद-शास्त्रोपदिष्ट सृष्टि, स्थिति और लयतत्व का संक्षिप्त संवाद । 'नाश' और 'लय' इन शब्दद्वयके मूल अर्थ । 'परमेश्वरका पर्य्यालोचनारूप तपः वा 'ईक्षण' ही लयप्राप्त जगत्‌की पुनरुत्पत्तिका कारण है' इस बातका अर्थ । 'करुणामय परमेश्वरकी दुःखमय जगत्‌की सृष्टि करनेकी इच्छा होनेका कारण क्या है ?' इस प्रश्नका उत्तर । रात्रिसूक्तके प्रथम मन्त्रकी व्याख्या । ११७-१२६

षष्ठ परिच्छेद ।

रात्रिसूक्तके द्वितीय मन्त्रकी व्याख्या (१२६)

वेदोक्त अनुष्ठान द्वारा शुद्धचित्त पुरुषगण प्रलयकालमें अज्ञानावृत नहीं रहते,वे तब भी जागरित रहते हैं । वेद मूलक इतिहासपुराणादिमें तथा वेदके अङ्गोपाङ्गमें भी स्पष्टरूपसे बहुशः कहा गया है

कि प्रलयकालमें भी ऋषिगण जागरित रहते हैं। वेद विश्वजगत्का नित्य-इतिहास है। अनादिनिधना विद्यारूपा वेदवाणी स्वयम्भू द्वारा शिष्य-प्रशिष्यक्रमसे प्रवर्त्तित होती हैं। रात्रिसूक्तके तृतीय मन्त्रकी व्याख्या। (१३३) उषाको क्यों रात्रिकी भगिनी कहा गया है ; मायाका स्वरूप ; निघण्टुकृत 'माया' शब्दकी व्युत्पत्ति। ऋग्वेदके तृतीय और चतुर्थ अष्टकमें 'माया' शब्दका प्रयोग ; श्रीमद्भागवत्में माया शब्दका प्रयोग रात्रिसूक्तके चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ, सप्तम, और अष्टम मन्त्रकी व्याख्या। (१३८-१४१) रात्रिसूक्तके परिशिष्टमें 'रात्रि' पदका जिस अर्थमें प्रयोग हुआ है ; (१४१) सामविधान ब्राह्मणमें 'रात्रि' शब्दका प्रयोग। (१४४) छान्दस कर्म्मका स्वरूप। (१४६) दृश्यमान जगत्को पुष्प कहनेका हेतु।... ... ...१२६-१५३

सप्तम परिच्छेद (पूर्व्वार्ध)।

शिवरात्रिका, क्यों 'शिवरात्रि' यह नाम पड़ा है ? 'शिवरात्रि' इस शब्दका अर्थविचार।—

'योग' 'रूढ़ि' और 'योगरूढ़ि' इन त्रिविध शब्दार्थबोधक शक्तिकी बात ; माधवाचार्य्यकृत 'शिवरात्रि' पदकी व्युत्पत्ति। (१५४-१५८) पुराणादि शास्त्रमें शिवरात्रि व्रतकी प्रशंसा (१५८) शिवरात्रि-व्रतकी प्रशंसा सुन कर जिज्ञासुकी जाननेकी इच्छा

हुई है ;—'शिवरात्रि' पदके यथोक्त अर्थसे क्यों यह माघफाल्गुन की कृष्णा चतुर्द्दशी तिथिमें अनुष्ठेय व्रतविशेषका वाचक होता है? माघ-फाल्गुनकी कृष्णा चतुर्द्दशीमें उपवास, जागरण और शिवपूजन करनेसे क्यों सर्व्वकामना चरितार्थ होती हैं? क्यों मुमुक्षु मुक्ति लाभ करते हैं? सुननेमें आता है, कि किसी ने बिना जाने बाध्य (मजबूर) होकर, उस तिथिमें रात्रि-जागरण और उपवास किया था, इस लिये वह निष्पाप हुआ था और गणत्वको प्राप्त हुआ था, उस तिथिका इस प्रकार माहात्म्य होनेका कारण क्या हैं? माघ-फाल्गुनकी कृष्णा चतुर्द्दशी शिवजीकी विशेषकर प्रिय क्यों हुआ है? कलिमें माघ-फालगुनकी कृष्णा चतुर्द्दशीकी रात्रिमें शिवजी पृथिवी पर विचरण करते हैं, उस समय स्थावर-जङ्गम सब लिङ्गोंमें शिवजीका आवेश होता है' 'रात्रि नवसंख्यक नवति असुरयुक्ता हैं' इन बातोंका आशय क्या हैं?

उक्त तिथिमें उपवास और जागरणका इतना प्रभाव क्यों हुआ है? 'व्रत' कौनसा पदार्थ है?—अगर इन प्रश्नोंका समीचीन समाधान करना हो, तो काल और उसके अवयवोंका तत्त्व जानना चाहिये। ज्योतिष शास्त्रका संक्षिप्त स्वरूप, पूज्यपाद भृगुदेव प्रदर्शित योग और ज्योतिषका अपूर्व्व सम्मिलन।......१५४—१६८

———

श्रीसदाशिवः शरणं ।

रमाबोध ।

शिवरात्रि ।

प्रस्तावना ।

धर्म्म और विज्ञान ।

'धर्म्म' शब्दका आजकल साधारणतः जिस अर्थमें प्रयोग किया जाता है, 'धर्म्म' शब्द उच्चारित होनेसे आजकल लोगोंके मनमें जो अर्थ प्रतिभात होता है, मेरे ख्यालमें, निखिलधर्म्मप्रसूति सनातनो श्रुति तथा श्रुतिमूलक शास्त्रोंमें 'धर्म्म' शब्दका उससे व्यापकतर अर्थमें प्रयोग किया गया है। यह ख्याल मुझमें पहले तभी उत्पन्न हुआ था जब कि मैंने आर्य्यशास्त्रप्रदीपकी उपक्रमणिकाके प्रथम खण्डके २२६ पृष्ठ पर 'धर्म्म' पदार्थके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा गया है, उसका पाठ किया था। आर्य्यशास्त्रप्रदीपमें लिखा गया है—" 'धर्म्म किसे कहते हैं?'

वेदादि शास्त्रोंसे यह प्रश्न पूछ कर हमलोगोंको जो उत्तर मिला है, उनसे धर्म्मका जो लक्षण जाननेमें आया है, उससे पक्षपातशून्य उन्निनीषु हृदय अवश्य ही इसे स्वीकार करेंगे, कि और किसी भी देशमें कोई व्यक्ति धर्म्मका वैसा पूर्ण लक्षण दे नहीं सके हैं। अगर धर्म्मका पूर्ण रूप—धर्म्मकी कमनीय सत्य मूर्त्तिका दर्शन कर त्रिताप-ज्वालाको एकबारगी शान्त करना हो, तो वेदोक्त धर्म्मका स्वरूप जानना होगा और यथारीति उसका अनुष्ठान करना होगा। जिनका ऐसा ख्याल है कि 'धर्म्म' और 'रिलिजन्' (Religion) एक ही चीज़ हैं, वे कभी 'जो वेदज्ञ हैं तथा वेदबोधित धर्म्मके अनुष्ठाता हैं, वही यथार्थ धार्म्मिक हैं' इस वाक्यका तात्पर्य्य समझ न सकेंगे। वास्तवमें 'धर्म्म' और 'रिलिजन्' एक चीज़ नहीं हैं, सर्वांशमें बराबर नहीं हैं। समुद्रके साथ नदीका जो सम्बन्ध है, धर्म्मके साथ रिलिजन्का भी वही सम्बन्ध है ; 'धर्म्म' पूर्ण है, 'रिलिजन्' इसका अंश है ; 'धर्म्म' प्रकृति है, 'रिलिजन्' इसकी विकृति है ; 'धर्म्म' अपरिच्छिन्न है, 'रिलिजन् इसका परिच्छिन्न भावविशेष है। जो पूर्ण होना नहीं चाहते, और चाहने पर भी जिनके पूर्णत्वप्रापकसाधनविहीन संकीर्ण हृदयमें पूर्णका रूप भी अपूर्ण सा ही प्रतीत होता है, वे धर्म्मको रिलिजन्से व्यापकतर पदार्थ स्वीकार नहीं करेंगे—प्राकृतिक नियमानुसार कर भी नहीं सकेंगे। अगर 'धर्म्म' और 'रिलिजन्' एक ही चीज़ होते, तो विदेशीय सुधीगण विज्ञान (Science) को रिलिजन्से अलग चीज़ नहीं समझते, तो विज्ञानकुशल डाक्टर जन् विलियम्

ड्रेपरको रिलिजन् और विज्ञानका विरोध दिखाकर बड़ा सा ग्रन्थ नहीं लिखना पड़ता, * तो धीमान् हर्ब्वर्ट् स्पेन्सर्को रिलिजन् और विज्ञानका सामञ्जस्य विचार करनेके लिये इतनी तकलीफ़ उठानी नहीं पड़ती, तो विज्ञानके अभ्युदयसे रिलिजन्को वात्याहत कदली वृक्षकी नाईं काँपना नहीं पड़ता, तो वैज्ञानिक लोग रिलिजन्को इतनी नगण्य वस्तु नहीं समझते, तो विदेशीय कोविद गण (पण्डित लोग) कर्त्तव्यनीतिको (Morality) रिलिजन्की सीमाके बाहर नहीं समझते। महर्षि कणादने कहा है—जिससे नित्य और अनित्य ये दोनों प्रकारके कल्याण प्राप्त होते हैं, जो अभ्युदय तथा निःश्रेयस (निश्चित श्रेयः—स्थिर कल्याण) का कारण है, वही 'धर्म्म' है। अगर विदेशीय

---

* जिन्होंने विज्ञानकुशल डाः ड्रेपरका रिलिजन् और विज्ञान इन दोनोंका विरोध विषयक इतिहास (History of the conflict between Religion and Science) नामक ग्रन्थ पाठ किया है, वही जानते हैं कि डाः ड्रेपरने जड़विज्ञानकी उन्नति ही चरमोन्नति समझी थी। रिलिजन्से यन्त्रादि बन नहीं सकते, रिलिजन्से विश्वकी व्यापकतर दृष्टिका लाभ नहीं हो सकता, अतः विज्ञानके मुकाबिलेमें रिलिजन्को अकिंचित्कर पदार्थ ही कहना पड़ेगा। विज्ञान ही मनुष्यका स्थिर अवलम्बन है, विज्ञान द्वारा ही विश्वका यथार्थ रूप देखनेमें आता है, विज्ञान ईश्वरका भीषणतर रूप हमलोगोंकी आँखोंके सामने खड़ा कर देता है ("In that conflict science alone will stand secure ; for, it has given us grander views of the universe, more awful views of God")। डाः ड्रेपर 'रिलिजन्' कहनेसे जो कुछ समझते थे, धर्म्म कदापि वह पदार्थ नहीं है।

पण्डित लोग रिलिजन्को इसी दृष्टिसे देखते, तो रिलिजन् और धर्म्म एक ही चीज़ होते ।

आर्य्यशास्त्रप्रदीपकारकी इन बातोंको सुनकर ये युक्तियुक्त हैं या नहीं सो यथाशक्ति विचार किया है। आर्य्यशास्त्रप्रदीप-कारके मुखसे बहुत बार सुना है कि संशय दूर करनेके लिये जिज्ञासा नास्तिकता नहीं कहलाती, वेदके अविरोधी-तर्क द्वारा श्रुत विषयके अर्थका अनुसन्धान, श्रुत विषयके सम्भावितत्वका विचार अवश्य करना चाहिए। विचार कर मुझे उपलब्धि हुई है, कि आर्य्यशास्त्रप्रदीपकारकी बातें वेदसम्मत हैं, युक्तिसिद्ध हैं। महर्षि कणादने 'धर्म्म' के व्याख्यानमें प्रवृत्त होकर, प्रवृत्ति-मूलक और निवृत्तिमूलक इन द्विविध धर्म्मकी ही व्याख्या की है। महर्षि कणादका वैशेषिक दर्शन पाठ करनेसे यह असन्दिग्ध रूपसे प्रतिपन्न होता है, कि 'विज्ञान' 'धर्म्म' से भिन्न पदार्थ नहीं है। महर्षि कणादका वैशेषिक दर्शन पाठ करनेसे मालूम होता है, कि भूत और शक्ति विषयक समीचीन ज्ञान धार्म्मिकके लिये कभी उपेक्षणीय नहीं है, धार्म्मिकके लिये भूत तथा शक्ति विषयक ज्ञानार्ज्जनका प्रयोजन है। महर्षि कणादने भूत तथा शक्ति विषयक तत्वज्ञानार्ज्जनको अभ्युदय और निःश्रेयससिद्धिरूप पुरुषार्थका साधन विशेष बताया है, सार्व्वभौम सत्यका रूप देखना ही मनुष्यके सर्व्वप्रकारकी पुरुषार्थसिद्धिका कारण हैं— महर्षि कणादने यही समझाया है, महर्षि कणादने यही प्रमाणित किया है कि 'सत्य ही वेदबोधित धर्म्मका स्वरूप है'। महा-

भारतका भृगु-भरद्वाज संवाद पाठ करनेसे भी स्पष्टतः प्रतिपन्न होता है कि, सत्य, सुख, धर्म्म, ज्ञान और वेद, ये एक ही पदार्थके भिन्न भिन्न नाम हैं। *

क्या यथार्थ विज्ञान ईश्वर और ईश्वरकी उपासनाको त्याग सकता है?

प्रश्न होगा कि, अगर धर्म्म और विज्ञान भिन्न पदार्थ न हों, तो इन दोनोंके बीच इतना विरोध रहनेका क्या कारण है? तो वैज्ञानिकोंके बीच बहुतेरे धर्म्मानुष्ठाताओंको विज्ञानालोकविहीन क्यों ख्याल करते हैं? तो, 'ईश्वरविश्वास असभ्योचित है' इसे प्रतिपादन करनेके लिये वैज्ञानिक लोगोंने बड़ी तकलीफ़ उठाकर इतने ग्रन्थ क्यों लिखे हैं और लिखा करते हैं? फिर धर्म्मानुष्ठाता लोग भी किस लिये साधारणतः विज्ञानविद्वेषी हुआ करते हैं? क्या वैज्ञानिक होनेसे ईश्वरोपासनाका कोई प्रयोजन नहीं रहता? क्या ईश्वरोपासना वस्तुतः मूर्खका कार्य्य है? वर्ब्बरोचित व्यापार है?

जो ईश्वर ज्ञान-विज्ञानमय हैं, जो ईश्वर सर्व्वशक्तिमान् हैं, जिन अखण्डसच्चिदानन्दमय ईश्वरकी सत्तासे ही सब कोई

---

* "भृगुरुवाच। सत्यं ब्रह्म तपः सत्यं सत्यं सृजति च प्रजाः। सत्येन धार्य्यते लोकः स्वर्गं सत्येन गच्छति॥ * * * तत्र यत्सत्यं स धर्म्मो यो धर्म्मः स प्रकाशो यः प्रकाशस्तत् सुखमिति। तत्र यदनृतं सोऽधर्म्मो-योऽधर्म्मस्तत्तमो यत्तमस्तद् दुःखमिति॥"

—महाभारत, शान्तिपर्व्व, १८८ अ०।

सत्तावान् हैं, जो ईश्वर लोकत्रयको धारण कर रक्खे हैं, जो ईश्वर स्थावर-जङ्गम जगत्के नियन्ता—राजा हैं, जो ईश्वर सबके अन्तर्यामी हैं, प्राणियोंके अन्तरमें रहकर जो (उन) सबको शिक्षा दिया करते हैं, जो आत्मद हैं, जो बलद हैं, मनुष्यादि सारे जीव तथा अमरवृन्द जिनकी आज्ञा अवनतमस्तक हो पालन किया करते हैं, जिनकी उपासना किया करते हैं, जिनकी छाया—आश्रय, 'मैं तुम्हारा' कह जिनकी शरण लेना सर्व्वसुखका कारण है, सर्व्वदुःखकी निवृत्तिका एकमात्र उपाय है, मोक्षलाभका एकमात्र कारण है, जिनको भूलना, जिनका प्रपन्न न होना नरकप्राप्तिका कारण है—वेदने कहा है, क्या उनकी उपासना न कर, उनकी शरण न लेकर कोई रह सकता ?* क्या अपरिच्छिन्न सत्को, अनन्त ज्ञानको, अपरिमित आनन्दको त्याग कर कोई क्षणकाल भी रह सकता ? अतः प्रकृत विज्ञान कभी ईश्वरको त्याग नहीं सकता, यथार्थ वैज्ञानिक कभी

---

* "य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥"

—तैत्तिरीय आरण्यक।

"* * * यस्य परमात्मनश्छायाऽऽश्रयः शरणागतत्वममृतं मोक्षहेतुर्यस्याशरणागतत्वं मृत्युर्नरकहेतुः। * *।" —तै० आरण्यक भाष्य।

ऋग्वेदके इस मन्त्रका सायणभाष्य कुछ अन्यप्रकार है, यथा,—

"* * * अमृतं * * तदपि यस्य प्रजापतेः छाया छायेव भवति मृत्युर्यमश्च प्राणापहारी छायेव भवति * * *", अर्थात्, मृत्यु और अमृत ये दोनों ही जिनकी छाया है यानी जिनको आश्रय कर वर्त्तमान हैं इत्यादि।

ईश्वरकी उपासना न कर रह नहीं सकते। तो (फिर प्रश्न होगा कि) क्या यह मिथ्या है, कि विज्ञान ईश्वरका प्रत्याख्यान किया करता है, वैज्ञानिक लोग ईश्वरविश्वासको विज्ञानविहीन मूर्खका कार्य्य बताया करते हैं, 'ईश्वरोपासना वर्व्वरोचित कार्य्य है' ऐसा कह (उपासकोंको) उपहास किया करते हैं ?

अवश्य मिथ्या है। क्या यथार्थ विज्ञान कभी विज्ञानमयका प्रत्याख्यान कर सकता है ? यथार्थ वैज्ञानिकके सारे कर्म्म सिवा ईश्वरोपासनाके और कुछ हो नहीं सकते। अज्ञान वा स्वल्पज्ञान ही पूर्ण विज्ञानको, विशुद्ध ज्ञानको देखता नहीं, अल्पज्ञ ही अकृतज्ञ होता है, और अकृतज्ञ ही ईश्वरविमुख हुआ करता है। विज्ञान वा दर्शनकी पल्लवग्राहिता (उपर-उपर ज्ञान) ही मनुष्यको ईश्वर-विमुख वा नास्तिक करती है और इनके समीचीन ज्ञानका उदय होनेसे आस्तिक्यबुद्धिका आविर्भाव होता है। * अज्ञ, अकृतज्ञ वा

---

* डाक्टर चामर्स तथा लर्ड वेकन्ने इसके सम्बन्धमें जो कुछ कहा है सो हिचकक् (E, Hitchcock) प्रणीत *Religion of Geology* नामक ग्रन्थसे नीचे उद्धृत किया गया :—

"In the following extract it will be seen that Dr. Chalmers imputes the religious scepticism connected with science chiefly to a superficial acquaintance with science. His remarks may seem unreasonably severe and sweeping; nevertheless, they deserve consideration. And they accord with the idea of Lord Bacon, who says, 'A smattering of philosophy leads to atheism; whereas a thorough acquaintance with it brings a man back

अल्पज्ञ ही ईश्वरोपासनाको निष्प्रयोजन ख्याल करते हैं। अज्ञानवश ये लोग ईश्वरोपासनाको निष्प्रयोजन ख्याल करते हैं सही, पर क्या ये वस्तुतः किसीकी उपासना किये बिना रह सकते हैं ? दुर्भाग्यके कारण ये लोग उनकी उपासना करना नहीं चाहते जिनकी उपासना करनेसे ये कृतार्थ हो जायँगे, पर उनकी परिच्छिन्न शक्तियोंकी उपासना किये विना ये क्षणकाल भी नहीं रह सकते। हीनशक्ति शक्तिमान् होना चाहते हैं, अल्पज्ञ बहुज्ञ होनेकी इच्छा करते हैं (पर करते क्या हैं ?) आनन्दके प्रार्थी (होकर) पूर्णानन्दको त्याग कर स्वल्पानन्दभाक्की सेवा करते हैं, उनकी शरण लेनेहीमें सर्व्वदा उत्साही हुआ करते हैं, राजाका आश्रय त्याग कर राजाके अधस्तन कर्म्मचारियोंकी, राजाकी सत्तासे सत्तावानोंकी परिचर्य्या किया करते हैं, भूतनाथ शिवको छोड़कर भूतकी उपासना कर कृतार्थ होना चाहते हैं। अतः यथार्थ विज्ञान कभी ईश्वरको तथा ईश्वरकी उपासनाको त्याग नहीं सकता।

---

again to religion' 'We have heard', Dr. Chalmers remarks, 'that the study of natural science disposes to infidelity. But we feel persuaded that this is a danger associated only with a slight and partial, never with a deep and adequate and comprehensive view of its principles. * * *'

—*Chalmers' Works. Vol. VII, P. 262.*"

यथार्थ विज्ञान वा प्रकृत वैज्ञानिक ईश्वर और ईश्वरकी उपासनाको त्याग नहीं सकते, इस बातका तात्पर्य्य।

यथार्थ विज्ञान वा प्रकृत वैज्ञानिक ईश्वर और ईश्वरकी उपासनाको त्याग नहीं सकते' अगर इस बातका तात्पर्य्य जानना हो, तो यथार्थ विज्ञानका तथा प्रकृत वैज्ञानिकका लक्षण क्या है, और ईश्वर कौन् पदार्थ हैं सो पहले निश्चय करना चाहिये।

यथार्थ विज्ञान और प्रकृत वैज्ञानिकके लक्षण।

आर्य्यशास्त्रप्रदीपकी उपक्रमणिकाके द्वितीयांशमें कहा गया है कि शास्त्रमें 'विज्ञान' शब्दका बहुत अर्थोंमें प्रयोग किया गया है। 'मेदिनी' में इसके 'ज्ञान' और 'कर्म्म' ये दो अर्थ धृत हुए हैं। अमरसिंहने मोक्षोपयोगि-ज्ञानको 'ज्ञान' और तदन्यफलिका (मोक्ष जिसका फल नहीं है) शिल्प तथा शास्त्रविषयिणी बुद्धिको (Worldly or profane knowledge derived from worldly experience opposed to ज्ञान—which is knowledge of ब्रह्म) विज्ञान कहा है। श्रुतिमें 'आत्मैक्यज्ञान', 'विवेकबुद्धि', इत्यादि अर्थोंमें 'विज्ञान' शब्दका प्रयोग किया गया है। * भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने गीताके सप्तम अध्यायमें

---

* "विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः। सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥"—कठोपनिषद्।

"सञ्ज्ञानमाज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानम्।"—ऐतरेय आरण्यक। यह उससे

'स्वानुभव' इस अर्थमें 'विज्ञान' शब्दका व्यवहार किया है ("ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्षाम्यशेषतः।")। कूर्म्म पुराणमें निर्म्मल, निर्व्विकल्प, अव्यय ब्रह्मज्ञानके अर्थमें 'विज्ञान' शब्दका प्रयोग देखा जाता है। + आजकल 'Science' शब्दका 'विज्ञान' शब्द द्वारा अनुवाद किया जाता है। अमरसिंहने 'विज्ञान' शब्दका जो अर्थ ग्रहण किया है, अङ्गरेज़ी 'Science' शब्द उसी अर्थका वाचक है। पाश्चात्य दर्शन या विज्ञान (Science) इन दोनोंमें कोई ही स्थूल इन्द्रियग्राह्य जगत्की:सीमा अतिक्रम करनेमें इच्छुक या समर्थ नहीं है। विज्ञानवित् टिण्डल्ने स्पष्ट ही स्वीकार किया है कि विज्ञान (Science) प्रकृति (Nature) के आद्यन्तका कोई समाचार नहीं जानता। इस रहस्यके उद्भेदके लिये विज्ञानने हाथ पसारा था, पर कृतकार्य्य नहीं हुआ, यह दुर्भेद्य रहस्य

विशिष्ट है, ऐसी विवेकबुद्धि ही यहां पर 'विज्ञान' शब्दका अभिप्रेत अर्थ (मतलब) है ("विज्ञानं इदमस्माद्विशिष्टमित्येवमादिविवेकः।"

—सायण भाष्य।

"विज्ञानमानन्दं ब्रह्म। * * *। सर्व्वेप्राणा अनूतक्रामन्ति स विज्ञानो भवति स विज्ञानमेवान्ववक्रामति।"

वृहदारण्यकोपनिषत्।

+ "तस्माद्विज्ञानमेवास्ति न प्रपंचो न संस्थितिः। अज्ञानेनावृतं लोके विज्ञानं तेन मुह्यति॥

विज्ञानं निर्म्मलं सूक्ष्मं निर्व्विकल्पं यदव्ययम्। अज्ञानमितरत् सर्व्वं विज्ञानमिति तन्मतम्॥"

कूर्म्मपुराण, उपरि विभाग, २ अध्याय।

है।* पूज्यपाद भार्गव शिवरामकिंकरका 'ईश्वरानुग्रह' नामक सम्भाषण पाठकर मुझे विदित हुआ है, कि जर्म्मन्देशीय जड़तत्व-वादी अध्यापक हेकेल्ने कहा है,—'जो यथार्थ विज्ञानपदवाच्य हैं वे सब प्रत्यक्षसमवाय हैं, सब विज्ञान ही प्रत्यक्षसे जन्म लाभ करते हैं। वैज्ञानिक अनुभव दर्शन और परीक्षा (Observation and experiment) से ही हुआ करता है' हेकेलके मतमें केवल विचार (Reasoning) द्वारा ही हमलोग जगद्विषयक विशुद्ध ज्ञान लाभ किया करते हैं, विचार द्वारा ही हमलोगोंके जगत् सम्बन्धीय मुख्य प्रश्नोंका समाधान हुआ करता है, विचारशक्ति ही मनुष्यका सर्व्वोत्कृष्ट दान (Gift) है, विचारशक्ति ही मनुष्य-का एकमात्र असाधारण अधिकार (Prerogative) हैं। वास्तव-में यही मनुष्यको इतर प्राणियोंसे पृथक् करता है। हेकेलने कहा है—अब भी बहुतेरे विश्वास करते हैं कि ईश्वरसम विचारशक्तिके सिवा ज्ञानार्ज्जनके और भी उपाय हैं। वे ख्याल करते हैं कि ऐशा

---

* Science understands much of this intermediate phase of things that we call nature, of which it is the product; but science knows nothing of the origin or destiny of nature. Who or what made the Sun, and gave his rays their alleged power? Who or what made and bestowed upon the ultimate particles of matter their wondrous power of varied interaction? Science does not know; the mystery, though pushed back, remains unaltered."

—*Fragments of Science, Vol II. P. 52.*

उन्मेष (Revelation) वा आप्तोपदेश ज्ञानार्ज्जनका स्थिरतर मार्ग है। ऐसे अनिष्टकर भ्रमको बिना विलम्ब हमलोगोंको हटा देना चाहिये। अध्यापक हेकेलने ऐश उन्मेष वा अलौकिक आप्तोपदेशको तथा विश्वास-विषयक तथ्यको (Truths of faith) बुद्धिपूर्व्वक अथवा अबुद्धिपूर्व्वक-प्रतारणामूलक बताया है * 'शिवरात्रि' में कहा गया है—'अन्नपूर्णा उपनिषद्-में, पद्मपुराणमें, योगवाशिष्ठ रामायणमें विचारकी बहुत प्रशंसा और विचारविहीनकी बहुत निन्दा देखी जाती है। अन्नपूर्णा उपनिषत् तथा पद्मपुराणने कहा है—जिसका चित्त सर्व्वदा विचार-पर नहीं, उसे मृत ही समझना, श्वास, प्रश्वास, आहार आदि जीवितोंके कर्म्म करनेपर भी वह वस्तुतः जीवित नहीं, उसका

---

* By reason only can we attain to a correct knowledge of the world and a solution of its great problems. Reason is man's highest gift, the only prerogative that essentially distinguishes him from the lower animals. * * *. Yet the opinion still obtains in many quarters that besides our god-like reason, we have two further (and even surer!) methods of receiving knowledge—'Emotion' and 'Revelation', We must at once dispose of this dangerous error. Emotion has nothing whatever to do with the attainment of truth. * * *. And the same must be said of the so-called "revelation" and of the "truths of faith" which it is supposed to communicate; they are based entirely on a deception, consciously or unconsciously * *."

—*The Riddle of the Universe P. 6—7.*

जीवन अनर्थक है। * * * । ऐसा कोई विषय नहीं, जिसका स्वरूप बिना विचार निर्णीत होता हो, विचारही साधुओंकी गति है, विचार न करनेसे मोहभङ्ग नहीं होता, अज्ञानका नाश नहीं होता; सिवा विचारके विद्वानोंका दूसरा उपाय नहीं है, विचार द्वारा ही धीमानोंके बल, बुद्धि, तेज, प्रतिपत्ति, क्रियानुष्ठान, ये सब सफल होते हैं। क्या युक्त है, क्या अयुक्त है, क्या सत्य है, क्या मिथ्या है, इन्हें निश्चय करनेके मार्गपर विचार महादीपस्वरूप है। यथोचित विचारशक्तिके अभावके कारण ही मनुष्य शिवका स्वरूप जान नहीं सकता, जो यथार्थ कल्याणके विधाता हैं, जो ही वस्तुतः कल्याणमय हैं, उनको जानना नहीं चाहता, उनको जाननेका प्रयोजन नहीं समझता। जो लोग नास्तिक हैं, जो सर्व्वशक्तिमान्को अथवा सर्व्वशक्तिके केन्द्रभवन को त्यागकर परिच्छिन्न सुखके लिये क्षुद्र वा परिच्छिन्न शक्तिकी उपासना करते हैं, उनको भी स्वीकार करना पड़ा है कि केवल विचार द्वारा ही हमलोग शुद्ध ज्ञान लाभ किया करते हैं, विचार द्वारा ही दुर्व्विज्ञेय जागतिक रहस्यका भेद हुआ करता है, विचार शक्ति ही मनुष्यका सर्व्वोत्कृष्ठ दान है, असाधारण अधिकार है, यही इतर जीवोंसे मनुष्यको विशेषित करता है। खेदके साथ कहना पड़ता है कि इन्होंने भी विचारका विशुद्ध वा पूर्णरूप देखा नहीं है। अगर देखते, तो ये नास्तिक नहीं होते, तब तो ये बिना आपत्ति स्वीकार करते कि शिवही वस्तुतः शिव हैं, शिवही विचारशक्तिकी मूल प्रसूति हैं, शिवही सर्व प्रकार सुखके दाता हैं, शिवही सर्व्व प्रकार

दुःखके नाशकर्त्ता हैं, शिवही विश्वके ध्रुव आधार—अविचालि-विश्रामस्थल हैं। वेदसे ही विचारशक्तिका स्फुरण तथा प्रसारण हुआ करता हैं, वेद ही विचारशक्तिके केन्द्रभवन हैं। वेद विश्वकी प्राणशक्ति हैं, वेद ही विश्वके मन वा हिरण्यगर्भ हैं। महीधरने इसीलिये कहा है—शिव शास्त्रादिरूपसे ज्ञान प्रदान करते हैं, वेद-शास्त्रमय शिवका ज्ञानप्रदत्व ही मोक्षसुखकारित्व है। शिव वेद-शास्त्र द्वारा अज्ञानको हटा कर मोक्षप्रद ज्ञान देते हैं, इसीलिये उन-का मोक्षकारित्व सिद्ध होता है। सिवा विचारके ज्ञान नहीं होता ; विचारशक्ति वेद वा शिवसे स्फुरित होती है, सम्प्रसारित होती है। जिस तरह जलाशयमें लोष्ठादि फेंकनेसे चक्राकार गतिकी उत्पत्ति होती है और वह अन्तमें तट पर जा पहुंचती है, उसी तरह सर्व-गत—सर्वव्यापक संवित्—चित्-शक्ति प्राणस्पन्दन द्वारा चित्तभूमि पर तरङ्ग उत्पादन करती है। इससे विचारशक्तिका स्फुरण होता है, सम्प्रसारण होता है। * * * इसमें कोई सन्देह नहीं, कि विचार वेदमूलक है, विचारसे ही सर्व्वप्रकारके ज्ञानका विकाश हुआ करता है। * * *। अगर प्राणका स्पन्दन छन्दानुसार होता हो, तो विद्युत्प्रकाशकी नाईं विचारशक्तिका स्फुरण होगा ही। इसमें सन्देह नहीं, कि जो विचारविहीन हैं, तमोगुणके आधिक्य और सत्त्वगुणके ह्रासके कारण जिनकी विचारशक्तिका (आकाशमें स्पन्दन कम होनेसे जिस तरह आलोकके प्रकाशका ह्रास होता है, उसी तरह) स्फुरण नहीं होता, वह मृत वा जड़-वत् हैं।

अध्यापक हेकेल्ने जिस विचारशक्तिकी वड़ी ही प्रशंसा की है, जिसे उन्होंने ईश्वर-सम बताया है, इसमें सन्देह नहीं, कि उस विचारका यथार्थ रूप उनको देखनेमें नहीं आया था। जिन हेकेल्ने ऐश उन्मेषको, अलौकिक, प्रत्यक्षको बुद्धि-मूलक या अबुद्धि पूर्व्वक प्रतारणामूलक बताया है, जिन हेकेल्ने 'नेचर' (Nature) कहनेसे हम जिस पदार्थको समझते, हम नहीं जानते कि सिवा उसके और कोई अतिप्राकृतिक (Supernatural) और आध्यात्मिक (Spiritual) राज्य है ; धर्म्मग्रन्थोंकी कल्पित बातें या अध्यात्मविद्याकी कल्पनाके तथा अपने मतके अनुसार जो अतिप्राकृतिक और आध्यात्मिक पदार्थ वर्णित हुए हैं, वे केवल काव्य (Mere poetry) है, वे केवल कल्पनाके विजृम्भण हैं (An outcome of imagination) जिन हेकेलने इस प्रकारका मत प्रकाश किया है *—यह स्वीकार करना ही पड़ेगा, कि उनको यथार्थ विज्ञानका रूप देखनेमें नहीं आया था, उनकी विचारशक्ति बहुत ही परिच्छिन्न थी। इन्द्रियगम्य पदार्थ ही ज्ञानके एकमात्र विषय नहीं हैं ; केवल चक्षुरादि इन्द्रिय-ग्राम ही ज्ञानकरण नहीं हैं। क्या सत्य है, क्या मिथ्या है, इसे

---

* "Whether there is a realm of the supernatural and spiritual beyond nature, we do not know. All that is said of it in religious myths and legends, or metaphysical speculations and dogmas is mere poetry and an outcome of imagination.

—*The Wonders of Life. P. 39.*

स्थिर करना हो, तो प्रमाणका आश्रय लेना ही पड़ेगा (क्योंकि) प्रमाण द्वारा ही सत्यासत्यका निश्चय किया जाता है। इसमें सन्देह नहीं, कि न्यायदर्शनप्रणेता महर्षि गोतम तथा न्यायभाष्य-कर्त्ता वात्स्यायन मुनिकी "समाधि विशेषके अभ्यास से ही तत्वज्ञान होता है" यह बात पूर्ण सत्य है। समाधिद्वारा निर्धौतमल प्रमाण ही सर्व्वोत्कृष्ट प्रमाण हैं। पातञ्जल दर्शनमें योगज प्रज्ञाको 'ऋतम्भरा' कहा गया है। 'ऋत' शब्दका अर्थ सत्य है; जो प्रज्ञा ऋत (सत्य) को छोड़ और कुछ भी धारण नहीं करती, जिस प्रज्ञामें मिथ्याज्ञानका लेश भी नहीं है, वही 'ऋतम्भरा प्रज्ञा' हैं। ऋतम्भरा प्रज्ञा ही यथार्थ विज्ञान है।

'ईश्वर' चक्षुरादि इन्द्रियोंके अवेद्य परोक्ष वा अलौकिक पदार्थ हैं, अतः स्थूल प्रत्यक्ष और तन्मूलक अनुमान प्रमाण द्वारा अतीन्द्रिय 'ईश्वर' पदार्थकी सिद्धि—स्वरूपावगति हो नहीं सकती। जिस विज्ञानको चक्षुरादि इन्द्रियगम्य पदार्थके सिवा और कुछ देखनेमें नहीं आता, कहना न होगा, कि उस विज्ञानद्वारा ईश्वरका अस्तित्व प्रमाणित नहीं हो सकता। जिस विज्ञान द्वारा अलौकिक पदार्थ भी जाने जा सकते हैं, उसी विज्ञानसे ईश्वरका स्वरूप पूर्णतया निश्चय किया जा सकता है। सांख्यकारिकामें तथा पूर्व्वमीमांसा दर्शनमें कहा गया है,—महदादिका सृष्टि-क्रम, स्वर्ग, धर्म्माधर्म्मरूप अपूर्व्व और देवतादियोंका ज्ञान प्रत्यक्ष या अनुमानसे हो नहीं सकता, इन अतीन्द्रिय पदार्थोंका ज्ञान केवल शास्त्र वा आप्तोपदेशसे ही हो सकता है।

वैज्ञानिकोंके बीच भी ऐसे पुरुष थे और हैं भी जो ईश्वरके अस्तित्वपर विश्वास रखते थे और रखते हैं। ग्रोभ् (Grove) ने ईश्वरेच्छाको ही निखिल कार्य्यका मूल कारण माना है और स्वीकार किया है, कि विश्वकी सृष्टि ईश्वरकी ही कृति है। रसायनतन्त्रकुशल कुक्ने अनन्तज्ञानमय, हमलोगोंके चारों ओर विद्यमान तथा हमलोगोंके अन्तरमें, हमलोगोंके पार्श्वमें और हमलोगोंके ऊर्द्ध में प्रदीप्यमान ईश्वरपदार्थका अस्तित्व माना है।

प्रश्न होगा, कि जिस विज्ञानकी सेवा कर हेकेल्, बुक्नर आदि वैज्ञानिकगणने ईश्वरको निकालनेकी चेष्टा की है, क्या कारण है, कि उसी विज्ञानके सेवक होकर भी, रात-दिन उसी विज्ञानका सङ्ग करके भी ग्रोभ्, टेट्, आदि पुरुषगणको ईश्वर-विश्वास आ गया था?

पूज्यपाद भार्गव शिवरामकिंकरसे पूछकर मुझे विदित हुआ है, कि वेद—जो विशुद्ध ज्ञान-विज्ञानकी सनातन प्रसूति हैं, उन वेदसे प्राप्त प्रतिभा ही, (अर्थात्) ज्ञानमय एवं विज्ञानमय शिवजीकी कृपाही इसका कारण है। 'विचार' पदार्थके बारेमें संक्षेपमें जो कुछ कहा गया है, उसका अर्थ समझ सकनेसे यथोक्त समाधानका तात्पर्य्य सुखबोध्य होगा। धीमान् वैज्ञानिक हिच्कक्ने कहा है, कि विज्ञान (Science) भूत और भौतिक पदार्थ तथा मन पर ईश्वरके कर्त्तृत्वका—क्रियाकारित्वका इतिहास है। * पूज्यपाद

* "Scientific truth is but another name for the laws of nature. And a law of nature is merely the

भार्गव शिवरामकिंकरने उनके 'वेद विश्वजगत्का नित्य इतिहास है' शीर्षक प्रस्तावमें कहा है—हिचकक्ने विज्ञानका जो लक्षण बताया है, तदनुसार हमलोग वेदको ही यथार्थ विज्ञान कर निश्चय किया है। जगत्का विश्लेष करनेसे त्रिगुणात्मिका प्रकृति (प्रकाश-शील सत्त्व, क्रियाशील रजः और स्थितिशील तमः ये ही गुणत्रय हैं) और चिन्मय पुरुष ये दो पदार्थ मिलते हैं। जिन लोगोंने निविष्टचित्त हो विज्ञानका अनुशीलन किया है और किया करते हैं, जो वैदिकप्रतिभायुक्त हैं, हमें विश्वास है, कि उनको स्वीकार करना पड़ेगा, कि विज्ञान त्रिगुणात्मिका प्रकृतिकी यथाप्रयोजन स्तुति हीसे पूर्ण है, (त्रिगुणात्मिका प्रकृतिकी यथाप्रयोजन स्तुति करना ही विज्ञानका कार्य्य है)। भूततन्त्र (Physics) रसायनतन्त्र (Chemistry), ज्योतिष (Astronomy) इत्यादि विज्ञानशाखायें जिन सत्य वा धर्म्मका स्वरूप वर्णन करते हैं, वा करनेकी कोशिश करते हैं, वे त्रिगुणात्मक जगत्के इन्द्रियगम्य सत्य वा धर्म्मके सिवा और कुछ नहीं हैं। अतः वेद ही विशुद्ध वा यथार्थ विज्ञान हैं। जड़विज्ञान जिन तत्वोंकी खोज नहीं करता, जिन तत्वोंके अनुसन्धान बिना मनुष्य कृतकृत्य

---

uniform mode in which the Deity operates in the created universe. It follows, then, that science is only a history of the divine operations in matter and mind."

—*The Religion of Geology by Edward Hitchcock, D.D.; LL. D., P. 290.*

नहीं हो सकता, जिसे न जाननेसे मनुष्यकी ज्ञानपिपासा चरितार्थ नहीं हो सकती, जिसे न पानेसे मनुष्यके ईप्सिततमकी प्राप्ति नहीं होती, सिवाय वेदके और कोई उस पदार्थका पता दे नहीं सकता। अनुवीक्षण-दूरवीक्षणादि यन्त्रोंके अदृश्य पदार्थों कों देखने-के लिये वेद ही एकमात्र दर्शन हैं। शास्त्रने इसी लिये कहा है, कि सिवाय वेदके और कोई यथार्थ धर्म्माभिधायक नहीं हैं, मुमुक्षु मानवके लिये सिवाय वेदके और कोई, आश्रयणीय (शरण लेने योग्य) पदार्थ नहीं है। अतः वेद ही यथार्थ विज्ञान हैं, यथार्थ वेदज्ञ ही प्रकृत वैज्ञानिक हैं। स्थूल प्रत्यक्ष तथा तन्मूलक अनुमान इन दो प्रमाणोंके अज्ञेय पदार्थोंको जाननेका आप्तोपदेश ही उपाय है। शास्त्रोक्तलक्षणसे युक्त आप्तोपदेश ही ज्ञान विज्ञानकी मूल प्रसूति है, तर्कविचार (Reason), दर्शन और परीक्षा (Observation, Experiment) ये मूलतः आप्तोपदेश ही को आश्रय करके रहते हैं। पूज्यचरण भार्गव शिवरामकिंकरने स्वप्रणीत 'ईश्वरानुग्रह' नामक ग्रन्थमें कहा है—शास्त्रोक्तलक्षण-विशिष्ठ आप्तोपदेश ही ज्ञान-विज्ञानकी मूल प्रसूति है, यह बात आज कल बहुतोंके समीप, खासकर स्थूल प्रत्यक्षवादियोंके समीप सारहीनसी ही प्रतीत होगी। 'ईश्वरानुग्रह' नामक सम्भाषणमें तथा 'शिव-और-शिवार्च्चनतत्त्व' में यह विशदरूपसे प्रतिपादन किया गया है, कि आप्तोपदेश ही श्रेष्ठ प्रमाण है, सन्दर्शन और परीक्षा मूलतः आप्तोपदेशको ही आश्रय करके रहते हैं। निर्व्वितर्क समाधि ही पर (श्रेष्ठ) प्रत्यक्ष है। "वैदिक आर्य्य स्वभावतः

राजभक्त हैं" नामक ग्रन्थमें यह स्पष्टरूपसे समझाया गया है, कि 'वैदिक आर्य्य स्वभावतः ईश्वरभक्त हैं', अविकृत—स्वभावस्थित वेदप्राण वैदिक आर्य्य स्वभावसे ही ईश्वरभक्त हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं, कि स्थूल ग्राह्य विषयक समाधिसे ही जड़विज्ञानका आविर्भाव हुआ है और हो रहा है। पूज्यचरण भार्गव शिवराम-किंकरजीको कृपासे यह यथार्थरूपसे अनुभवमें आ गया है, कि बिना योगके किसी प्रकारके पुरुषार्थकी सिद्धि नहीं होती। बिना ईश्वरको कृपाके ईश्वर-विश्वास या ईश्वरानुराग हो नहीं सकता। दुर्भाग्यवश जो ईश्वरको यथार्थरूपसे जान नहीं सकते, ईश्वरकी प्रकृत पूजा या उपासना नहीं कर सकते, 'शिव-और-शिवार्च्चन-तत्व' में यह सिद्ध किया गया है कि, वे भी स्थूलभावसे ईश्वरके अस्तित्वको स्वीकार करते हैं, स्थूलभावसे ईश्वरकी उपासना किया करते हैं। 'शिव और शिवार्च्चनतत्व' पाठ करनेसे यह साफ तौरसे मालूम हो जायगा, कि 'शिव' और 'शिवा' अभिन्न हैं, 'शिव-शिवा' ही ईश्वर हैं'। जिन हेकेलने कहा है,—"म्याटर (Matter) कभी स्पिरिटको छोड़ न तो रह सकता है और न तो कोई क्रिया ही कर सकता है और स्पिरिट भी कभी म्याटरको छोड़ रह नहीं सकता। इस विषयपर गेटे(Goethe)के साथ मैं सहमत हूं"* मुझे विश्वास

---

* "On the contrary, we hold with Goethe that matter cannot exist and be operative without spirit, nor spirit without matter."

—*The Riddle of the Universe.*

है, कि अगर वह इस समय जीवित रहते, तो 'शिव-और-शिवार्च्चनतत्व'में शिव और शिवाका स्वरूप जिस तौरपर दिखाया गया है, उसे जानकर उन्हे बड़ा ही आनन्द होता और वे बड़ा ही उपकृत होते। पूज्यपाद भार्गव शिवरामकिंकरने कई एक जगहपर इसे विशदरूपसे प्रमाणित कर दिया है, कि हेकेल, हर्ब्बर्ट स्पेन्सर, हक्स्ली आदि जड़ैकत्ववादिगण जड़वादपर स्थिरभावसे खड़ा नहीं हो सके। जो शक्तिकी पूजा करते हैं, जो भूत और शक्तिका नित्यत्व अंगीकार करते हैं, जिन्होंने यह माना है, कि बिना पूर्णत्वको प्राप्त किये हुए परिणामक्रमकी (Evolution) परिसमाप्ति नहीं होती। इसमें सन्देह नहीं, कि विशुद्ध रूपसे न होनेपर भी वे ईश्वरका अस्तित्व मानते हैं, वे ईश्वरकी उपासना करते हैं। क्या बिना ईश्वरकी उपासना किये हुए इस जगतमें कोई रह सकता है ? 'उपासकको उपास्यके साथ सम्मिलित होनेकी चेष्टा ही जगत्का जगत्व है, पूज्यचरण भार्गव शिवरामकिंकरके इस उपदेशका मूल्य कितना है सो चिन्तन करना चाहिये। ईश्वर जगत्के उपादान कारण हैं, अतः जगत्से अभिन्न हैं। ईश्वर प्रकृतिको अन्तरालमें (बीचमें) रखकर जगत्का उत्पादन करते हैं। ईश्वर प्रकृतिसे अभिन्न हैं, जगत् प्रकृतिसे अभिन्न हैं, अतः ईश्वर और जगत् अभिन्न हैं। 'शिव-और-शिवार्च्चनतत्व' की इन बातोंका मतलब पूरी तौरसे समझमें आनेसे ईश्वरके स्वरूपका ज्ञान होगा, भाग्यवान्की ईश्वरविषयक विप्रतिपत्तिका निरास होगा। 'ईश्वर ज्ञानस्वरूप हैं' 'ईश्वर शक्तिस्वरूप हैं,' 'ईश्वर ऐश्वर्य्यस्वरूप हैं' 'ईश्वर बलस्वरूप

हैं,' 'ईश्वर वीर्य्यस्वरूप हैं,' 'ईश्वर तेजःस्वरूप हैं,'—ईश्वरका यह षाड़्गुण्य वेद-शास्त्रमें परिगीत हुआ है। प्रश्न होगा—'तो फिर ईश्वरको निर्गुण क्यों कहा जाता है?' 'शिव-और-शिवार्च्चनतत्व' में इस प्रश्नका जिस प्रकार समाधान किया गया है, उसका सारांश यही है कि,—प्राकृत गुण ईश्वरको स्पर्श नहीं कर सकता, इसीलिये ईश्वरको निर्गुण कहा गया है "अप्राकृतगुणस्पर्शं. निर्गुणं. परिगीयते। शृणु नारद! षाड़्गुण्यं कथ्यमानं मयानघ॥"—अहिर्बुध्न्य संहिता)। प्रतीच्य ईश्वरतत्वचिन्तकोंके बीच जिन लोगोंने ईश्वरके शक्तिमय रूपका, उनके ऋतमय रूपका, उनके प्रेममय रूपका (God revealed as Power, God revealed as Righteousness, God revealed s Love) स्वरूप वर्णन करनेकी चेष्टा की है, जब उनको ईश्वरका षाड़्गुण्य-तत्व जाननेमें आवेगा, तब उन्हें बड़ा आनन्द, मिलेगा, वे बड़ा लाभ उठावेंगे।

यथार्थ विज्ञान और प्रकृत वैज्ञानिक ईश्वरको त्याग नहीं सकते। यथार्थ विज्ञान ईश्वर वा प्रकृतिका ही तत्वान्वेषण करते हैं, मनुष्य प्रकृतिसे ही प्राकृतिक विज्ञान सीखा करता है, प्रकृतिसे ही प्रकृतिका इतिहास सुना करता है—ये बातें "वेद विश्वजगत्के नित्य इतिहास हैं" नामक सम्भाषणमें प्रतिपादित हुई हैं। टिण्डल, हेकेल आदि वैज्ञानिकोंके वचनसे ही प्रमाणित हुआ है, कि 'प्रकृति' और पाश्चात्यविज्ञानोपदिष्ट 'नेचर्' (Nature) एक चीज़ नहीं हैं। ईश्वर और काल, प्रकृति वा स्वभावके ही नामान्तर हैं ("ईशः कालश्चेति

स्वभावस्यैव नामान्तरम्।" नीलकण्ठकृत महाभारतटीका।) अहिर्बुध्न्य-संहितामें भी यही बात स्पष्टरूपसे प्रतिपादित हुई है। अतः 'मनुष्य प्रकृतिके पाससे ही प्राकृतिक विज्ञान सीखा करता है, प्रकृतिके पाससे ही प्रकृतिका इतिहास सुना करता है' इन बातोंके बदले यह कहा जा सकता है, कि 'मनुष्य ईश्वर या कालके पाससे ही विज्ञान सीखा करता है, ईश्वर वा कालके पाससे ही प्राकृतिक इतिहास जाना करता है, सर्व्वज्ञ नित्य ईश्वरसे ही ब्रह्मादि गुरु-परम्पराके क्रमसे जगत्में सारे ज्ञान-विज्ञानका प्रचार होता है'। पातञ्जल दर्शनने इसीलिये ईश्वरको आदि गुरु बताया है ("स पूर्व्वेषामपि गुरुः, कालेनानवच्छेदात्"—पा० द० २।२६)। सर्व्वज्ञ ईश्वरका ज्ञान ही 'वेद' शब्दका यथार्थ अर्थ है। शक्तिसे शक्तिमान्का कोई वास्तव भेद नहीं है। अतः ईश्वर, काल वा प्रकृतिसे वेद भी अभिन्न पदार्थ हैं। अतः यह विना बाधा कहा जा सकता है, कि जो विज्ञान अज्ञानवश ईश्वरका प्रत्याख्यान करते हैं, जो वैज्ञानिक ऐश उन्मेषको ज्ञान-विज्ञानका मूल प्रभव बतानेमें अनिच्छुक हैं वह विज्ञान विज्ञानपदवाच्य नहीं, वह वैज्ञानिक 'वैज्ञानिक' नाम धारण करनेके अयोग्य हैं। प्रकृत विज्ञान और यथार्थ वैज्ञानिक असलमें ईश्वर वा प्रकृतिकी ही उपासना किया करते हैं। अब 'शिव-और-शिवार्च्चनतत्व' में किन विषयोंकी आलोचना की गई है सो बड़े संक्षेपमें कहूंगा।

अन्तर्मुखा और बहिर्मुखा, जगत्की ये द्विविध गति हैं; जगत् एकबार केन्द्रसे बाहरकी तरफ और दूसरी बार बाहरसे केन्द्रकी

तरफ आगमन करता है। केन्द्रसे बाहर आना और बाहरसे केन्द्रकी तरफ जाना ये द्विविध गति ही जगत्का जगत्व वा जगत्का धर्म्म है। बाहरसे केन्द्रकी तरफ जाना ही ईश्वरोपासना वा योग है। अतः कहा जा सकता है, कि ईश्वरोपासना वा योग मनुष्य-का स्वाभाविक धर्म्म है। प्राकृतिक नियमके अनुसार मनुष्य जब केन्द्रकी तरफ़ जाता है, तब उसके चित्तमें निरोधशक्तिका प्राबल्य होता है, सत्वगुणकी वृद्धि होती है, तब उसके चित्तमें ज्ञान, वैराग्य, ईश्वरानुराग आदि सात्विक गुणोंका विकाश हुआ करता है और तभी मनुष्य स्वभावकी प्रेरणासे विचारपरायण होता है, ध्याननिरत होता है, आत्मदर्शनेच्छु होता है। जो गति जिस परिमाणमें केन्द्राभिमुखा होती हैं, अपरिणामि-भावके समीपवर्त्तिनी होती है, वह गति उसी परिमाणमें उत्कृष्ट होती है। श्रुतिने इस गतिको 'प्रेति,' 'प्रकृष्ट गति' वा धर्म्म कहा है।*

---

* आर्थर् लोभेल् (Arthur Lovell) की निम्नोद्धृत वाक्योंसे प्रमाणित होगा, कि उन्होंने यह बात अनेकतः स्वीकार की है, कि एकाग्रता वा समाधि ही सर्व्वप्रकार उन्नतिका कारण है :—

"Concentration, therefore, as a science and an art, has its subject-matter naturally divided into two main divisions, for, it has to deal with motion to and from a given centre.

Concentration without is illustrated when the individual works upon Nature, such as learning a trade, a profession, a science, an art, or carrying on a business

मर्त्यधाममें प्रकृत मनुष्य ही 'प्रेति' वा धर्म्म है ('मनुष्य वै धर्म्मो * * ।' —कृष्णयजुर्व्वेद संहिता) आर्य्यशास्त्रप्रदीपमें धर्म्म तथा यथार्थ धार्म्मिकका स्वरूप दिखानेके लिये ये बातें कही गयी हैं। जड़विज्ञानने 'सरल'(Rectilinear) और 'वक्र' (Curvilinear) इन द्विविध गतियोंका वर्णन किया है। जो गति कभी गन्तव्य दिशाको छोड़ती नहीं, अर्थात् गन्तव्यकी तरफ एकतानसे प्रवाहित होती, वह सरल गति है। वेदमें यह 'प्रेति' (प्रकृष्ट गति) वा धर्म्म नामसे कही गयी है। बात यह ठहरी, कि केन्द्र वा ईश्वरकी तरफ गति ही प्रकृष्ट गति वा यथार्थ धर्म्म है। वैदिक आर्य्यजाति स्वभावतः आध्यात्मिक है, स्वभावतः ईश्वरपरायण है, स्वभावतः सद्गुणविभूषित है। इसलिये इस जातिके सभी कर्म्म धर्म्ममूलक है। सभी कर्म्म यज्ञ, पूजा वा उपासना है। 'ईश्वरकी उपासना क्यों करेंगे', 'इसमें कौनसा प्रमाण है, कि ईश्वर नामसे कोई पदार्थ है?' 'असभ्य या अर्द्धसभ्य लोग ही ईश्वरके अस्तित्व पर विश्वास किया करते हैं, ईश्वरकी उपासना किया करते हैं—अविकृत वैदिक आर्य्यसन्तानोंके मनमें इस तरहके प्रश्नका, इस तरहके भावका कभी उदय नहीं होता, हो

---

etc., to which he devotes his whole attention * * *. Concentration within is illustrated when the individual thinks of 'God', 'spirit', 'Heaven', 'Religion', 'Worship', Peace', 'Nirvana', 'Eternity' "

—*Concentration. P. 19—20.*

नहीं सकता । वैदिक आर्य्यजातिके ईश्वर ही आत्मा हैं, ईश्वर ही प्राण हैं, ईश्वर ही मन हैं, ईश्वर हो सर्व्वस्व हैं, विपत्तिमें या सम्पत्तिमें, जागरणमें या स्वप्नमें, वैदिक आर्य्यजातिके हृदयमें सदा ईश्वर ही पूजित हुआ करते हैं ; वैदिक आर्य्यजातिके मुखसे सदा ईश्वरके नाम ही उच्चारित होते हैं । 'शिव-और-शिवार्च्चनतत्व' में यही सब बातें विशेष कर वर्णित हुई हैं। 'शिव' कौन हैं, 'रात्रि' कौनसा पदार्थ है ? 'शिवरात्रि' शब्दका यथार्थ अर्थ क्या हैं ? शिवरात्रिमें शिवजीकी पूजा करनेसे विशेष फलप्राप्तिका कारण क्या है ? 'पूजा' किसे कहते हैं ? किस तरहसे यथार्थरूपसे पूजा की जाती है———'शिव-और-शिवार्च्चनतत्व' में ये बातें विशदरूपसे कही गयी हैं ।

'शिवरात्रि' नामक ग्रन्थका प्रयोजन ।

अविकृत वैदिक आर्य्यसन्तानोंके बीच सभी कोई शिवरात्रि व्रत करते हैं, नर, नारी, बालक, युवा, प्रौढ़, वृद्ध सभी कोई बड़े उल्लास (आनन्द और उत्साह) के साथ इस व्रतका अनुष्ठान करते हैं । वैष्णव, शाक्त, गाणपत्य, सौर—ये सभी शिवरात्रि व्रत किया करते हैं । स्वभावस्थित आर्य्यसन्तानगण पञ्चोपासक हैं। वैदिक आर्य्यजाति तो अब मुमूर्षु हैं, तोभी शिवरात्रिके दिन इस जातिके प्राण मानों, समुत्तेजित हो उठते हैं, शिवरात्रिके दिन यह कुछ परिमाणमें अनुभवमें आता है, कि वैदिक आर्य्य-

सन्तान अभी तक जीवित हैं। हिमालयसे गङ्गासागर तक शायद ही कोई ऐसा गृह देखनेमें आवेगा जो कि शिवरात्रिके दिन 'शिव' 'शिव' 'शिव' इस प्राणप्रद, पवित्र मधुमय ध्वनिसे निनादित न होता हो। अहा! शिवरात्रिके दिन मालूम होता है, कि कल्याण-मय, करुणावरुणालय शिवजी अभी तक उनके प्रियतम वैदिक आर्य्य सन्तानोंको एकबारगी त्याग नहीं सके हैं। अहा! शिव-रात्रिके दिन यह साफ ही समझमें आता है, कि आशुतोष सचमुच ही थोड़ेमें तुष्ट (प्रसन्न) होते हैं। बहुत वर्ष तक काशीजीमें बास करनेका मुझे सौभाग्य मिला था; शिवरात्रिके दिन विश्वनाथधाममें जो कुछ देखा है, वह अनिर्व्वचनीय है, वैसा जीवन्त भाव और किसी दिन और किसी स्थानमें देखनेमें नहीं आया। शिवरात्रिके दिन प्रेममय शिवजी उनकी सन्तानोंको आकर्षण करते हैं, इस-लिये इस शुभदिनमें उनकी सन्तानगण जो उन लोगोंके प्राणके प्राण हैं, जो उन लोगोंके मनके मन हैं, जो उन लोगोंकी आत्माकी आत्मा हैं, उन शिवजीको वे लोग पहिचान लेते हैं, उनके स्मृति-पथ पर यह बात जाग उठती है। अहा! वे सब कुछ छोड़कर, किसी तरफ न ताक कर अपने प्राणोंका ज़रा भी ख्याल न कर शिवजीको देखनेके लिये दौड़ पड़ती हैं। इसी लिये कहता हूं, कि बिना शिवजीके आकर्षणके शिवजीके लिये इतनी व्याकुलता हो नहीं सकती। इस अपूर्व्व मनोरम दृश्यको देखकर संकल्प हुआ था, कि शिव और शिवरात्रिका यथार्थ तत्व क्या है, सो जानूंगा और उसे शिवभक्त वैदिक आर्य्य-सन्तानोंको जताऊंगा। रमासे मेरा यह

संकल्प सिद्ध हो गया। रमापर भृगुजीकी बड़ी कृपा है, शायद इसीलिये उन्हींकी प्रेरणासे पूज्यचरण भार्गव शिवरामकिंकरजीकी रमाको शिव-और-शिवार्च्चनतत्वके सम्बन्धमें उपदेश देनेकी प्रवृत्ति हुई थी। मुझे दृढ़ धारणा है, कि वर्तमान कालमें बहुतेरे उपासना और उपास्यका विज्ञान नहीं जानते, शिवरात्रिमें उपवास करते हैं, रात्रिमें जागरण करते हैं, शिवजीकी पूजा करते हैं, पर क्यों ऐसा करते हैं, शिवजो कौन हैं, शिवरात्रि क्या चीज है, पूजा किसे कहते हैं, किस तरह पूजा की जाती है, सो बहुतेरे ही नहीं जानते, इन्हें जाननेके लिये बहुतेरे हीका यथार्थ औत्सुक्य (व्याकुलता) नहीं है। अधिक क्या कहूं, किसी महाराष्ट्रदेशीय वेदपाठी विविधशास्त्र-कुशल एम० ए०, एम० डि० ने, जिन्होंने विलायत जाकर वहां पर मोक्षमूलरको भी अपनी अद्‌भुत वेदस्मृतिशक्ति द्वारा आश्चर्य्या-न्वित किया था, शिव और शिवपूजाके बारेमें स्वप्रणीत ग्रन्थमें जिस प्रकार मत प्रकाश किया हैं वह यथार्थ शिवभक्तका कदापि श्रोतव्य नहीं है। इसमें सन्देह नहीं, कि उसे सुननेसे यथार्थ शिव-भक्त हृदयमें बड़ी व्यथा पावेंगे। देशकी अवस्था कितनी मलिन हो रही है, वैदिक आर्य्यसन्तानोंकी कैसी दुर्गति हो रही हैं, इसको सोचनेसे हृदय मानों विदीर्ण हो जाता है। उपासना ही सर्व्व प्रकारकी उन्नतिका एकमात्र साधन है। जागतिक उन्नति हो, या आध्यात्मिक उन्नति, सिवाय समाधिके किसी प्रकारकी ही उन्नति हो नहीं सकती। अतः जिससे यथार्थ रूपसे उपासना हो सके सो जाननेके लिये आत्मकल्याणार्थीकी

चेष्टा होनी चाहिये। मुझे विश्वास है,—जो लोग यथार्थरूपसे शिवरात्रि व्रत करना चाहते हैं, जो यथार्थरूपसे शिवपूजा करनेके अभिलाषी हैं, वे 'शिव-और-शिवार्चनतत्व' पढ़नेसे विशेषतः उपकृत होंगे। इति

प्रकाशकस्य।

———

श्री सदाशिवः शरणं।

शिवरात्रि।

वक्ता—भार्गव शिवरामकिङ्कर योगत्रयानन्द।

जिज्ञासु—रमा।

प्रथम परिच्छेद।

'शिवरात्रि' क्या है और किसतरह यथार्थरूपसे
शिवपूजा की जा सकती है इत्यादि
विषयक प्रश्न।

जिज्ञासु। दादा! शिवरात्रि क्या चीज़ है? शिवरात्रिमें बहुतेरे उपवास करते हैं, शिवजीका पूजन करते हैं, रात्रि-जागरण करते हैं। क्यों ऐसा करते हैं? सुना है, कि शिवरात्रिमें उपवास करनेसे, रात्रि-जागरण करनेसे, प्रहर-प्रहर पर शिवजीकी पूजा

करनेसे आशुतोष बड़े ही प्रसन्न होते हैं, जो जो कुछ मांगता है, उसको वही दे देते हैं। क्या कारण है, कि शिवरात्रि-व्रत करनेसे शिवजी विशेषतया प्रसन्न होते हैं? मैं जानना चाहती हूं, कि शिवचतुर्द्दशीमें उपवास करनेसे और रातमें जागनेसे आशुतोष क्यों प्रसन्न होते हैं। किस तरह शिवजीकी पूजा की जाती है, सो मैं नहीं जानती। चाहती हूं, कि भली भांति शिवजीकी पूजा करूं। आप कृपाकर मुझे शिवजीकी पूजा अच्छी तरहसे करनेको सिखा दीजिये, शिवचतुर्द्दशी-व्रत करनेसे शिवजी क्यों विशेषतया प्रसन्न होते हैं, सो समझा दीजिये।

वक्ता। शिवरात्रि क्या है, शिवरात्रि-व्रत करनेसे आशुतोष क्यों विशेष कर प्रसन्न होते हैं, उपवास और रात्रि-जागरण करने से क्या फल होता है, सो अवश्य ही जानना चाहिये, मैं तुम्हें जितना तक हो सकेगा, इन बातोंको साफकर समझा देता हूं, तुम सावधान होकर सुनो। अगर शिवरात्रि किसे कहते हैं, जानना हो, तो पहले 'शिव' और 'रात्रि' इन दो शब्दोंके अर्थ जानने होंगे। यदि यह जानना हो, कि 'उपवास' और रात्रि-जागरण करनेसे क्या फल होता है, तो 'उपवास' किसे कहते हैं, 'रात्रि' और 'जागरण' इन दो शब्दोंके मूल अर्थ क्या हैं सो जानना होगा। 'पूजा' क्या चीज़ है, यथार्थरूपसे पूजा करना हो, तो क्या करना पड़ता है, बिना इन बातोंको जाने हुए कोई यथायथ भावसे पूजा कर नहीं सकता। अतः अच्छे तौर पर पूजा करना हो, तो 'पूजा' किसे

कहते हैं, किस तरहसे पूजा करनी होती है, सो पहले जानना पड़ेगा। तुम जिससे यथार्थरूपसे पूजा कर सको, मैं तुम्हें वैसा ही उपदेश दूंगा।

जिज्ञासु। दादा! बहुबार आपके मुखसे सुना है, कि शब्दका अर्थ न जाननेसे ज्ञान नहीं होता, अर्थ न जान कर शब्दका उच्चारण करनेसे, मन्त्रजप करनेसे कोई विशेष फल नहीं मिलता। मैं तो किसी शब्दहीका अर्थ नहीं जानती, तो फिर मेरा क्या होगा, दादा? जिन शब्दोंका प्रयोग करती हूँ, मैं किस तरह उनका अर्थ जान सकूंगी? मुखसे 'शिव' 'शिव' कहती हूं, पर शिव कौन हैं, सो तो नहीं जानती। शिवजीकी तसवीर देखी है, शिवपूजा करते समय उस तसवीर को ध्यानमें लानेकी कोशिश करती हूं; पूजा करनेमें 'ध्यान' करना पड़ता हैं, शिवजीका 'ध्यायेन्नित्यं महेशं' इत्यादि ध्यान-वाक्य कण्ठ कर लिया है, पूजा करनेके समय उसीकी आवृत्ति करती हूं, पर कुछ समझमें नहीं आता। शिवजीके ध्यान-कालमें कुछ शब्दोंका उच्चारण मात्र किया करती हूं, जिन शब्दोंका मानस-भावसे उच्चारण करती हूँ, उनके अर्थ क्या हैं, सो नहीं जानती। समझमें आता है, कि जिनके अर्थ नहीं जानती, उन शब्दोंका उच्चारणमात्र ही 'ध्यान' नहीं है, ऐसा (इस प्रकारकी क्रिया) करके आनन्द नहीं मिलता। जिन शब्दोंका उच्चारण करती हूं, उनका अर्थ जाननेकी बड़ी ही इच्छा होती है। "शिव भगवान् हैं", "शिव परमात्मा हैं," बहुतोंको ऐसा

कहते सुनती हूं, पर इसे सुनकर मुझे तृप्ति नहीं होती, शिव कौन हैं, सो समझमें नहीं आता, इसलिये आनन्द नहीं होता। 'शिव कौन् हैं?' इस प्रश्नका 'शिव भगवान् हैं,' 'शिव परमात्मा हैं,' इस प्रकारका उत्तर देना कुछ कठिन नहीं है, मैं भी दूसरेसे सुनकर उक्त प्रश्नका इस प्रकार उत्तर दे सकती हूं। (बात यह है कि) 'भगवान्' क्या चीज़ हैं, 'परमात्मा' कौन्सी सामग्री हैं, सो ही तो मैं नहीं जानती। अतः 'शिव भगवान् हैं,' 'शिव परमात्मा हैं,' इन बातोंको सुनकर 'शिव' कौन हैं, सो किस तरह जानूँगी?

वक्ता। रमा! तुम्हारी बात सुनकर मुझे बड़ा ही आनन्द हो रहा है। जिनको जो जानता नहीं, जिनके साथ जिसका परिचय नहीं, उनका वह ध्यान नहीं कर सकता। इसमें कोई सन्देह नहीं कि, अर्थ न जान कर 'ध्यायेन्नित्यं' इत्यादि शब्दोंका केवल उच्चारण करनेसे ध्यान नहीं होता। मैं तुमको आगे समझा दूँगा, कि 'शिव' शब्दका अर्थ न जान कर 'शिव' शब्दकी अर्थ-भावना न कर दूसरे विषयकी चिन्ता करते हुए मुखसे 'शिव' 'शिव' शब्दका उच्चारण करनेसे जप नहीं होता। इस प्रकार जपसे जापकको (जप करनेवालेको) जपका फल नहीं मिलता, हृत्पद्ममें आराध्य देव देखनेमें नहीं आते, ध्यान (वाक्य) में जो मनोहर रूप वर्णित हुआ है, वह मनोहर रूप उनके चित्तपर प्रतिफलित नहीं होता।

जिज्ञासु। दादा! यथार्थरूपसे ध्यान कर सकनेसे क्या शिव-

जो देखनेमें आते हैं ? क्या 'शिव' शब्दके अर्थकी यथार्थ रूपसे भावना करते हुए जप करनेसे शिवजी दर्शन देते हैं ?

वक्ता। अवश्य, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं, रमा !

जिज्ञासु। आपको मैं जिस प्रकार देख रही हूं, क्या शिवजी उसी प्रकार देखे जा सकते हैं ? जब मुझे कुछ कष्ट पहुंचता है, तब मैं आपको बुलाती हूं, मेरा आह्वान सुनकर आप उसी वक्त उत्तर देते हैं, पूछते हैं, 'क्यों बुलाती हो, रमा ! क्या हुआ है ?' और मेरा कष्ट दूर कर देते हैं ; क्या शिवजीको भी मैं उसी तरह देख सकती हूं ? क्या जब मुझे कष्ट पहुंचेगा, तब अगर मैं शिवजीको बुलाऊँ, तो वे उसी वक्त उत्तर देंगे ? 'क्या हुआ है, रमा ?' इस तरह पूछेंगे ! मेरा कष्ट दूर कर देंगे ?

वक्ता। तुम मुझे जिस तरह देख रही हो, अगर ठीक उसी तरह शिवजीको देखनेकी तुम्हारी प्रवल इच्छा हो, तो तुम शिवजी-को भी उसी तरह देख सकोगी। शिवजी सर्व्वशक्तिमान् हैं, वे सर्व्वत्र विराजमान हैं, वे इच्छामात्रसे ही शरीर धारण कर सकते हैं, वे करुणासागर हैं, स्वतन्त्र होनेपर भी वे भक्तपरतन्त्र हैं, वे भक्तगम्य हैं। किसी भक्तके बुलानेसे वे उत्तर देते हैं, उनको देखनेकी चाह करनेसे वे दर्शन देते हैं, वे भक्तोंके पालनमें सदा तत्पर हैं, भक्तोंका कष्टनिवारण करना उनका स्वभाव ही है। पर शिवजी कौन हैं सो जानना चाहिये, शिवजी कौन हैं, इस बातका निर्णय करना चाहिये। शिवजी सर्व्वशक्तिमान् हैं, वे सब कुछ कर सकते हैं, वे भक्ताधीन हैं, वे प्रेमपारावार हैं, वे

करुणावरुणालय (दयाके सागर) हैं—हृदयमें इस तरहका अचल विश्वास रखना चाहिये।

जिज्ञासु। दादा! शिवजी मेरे कौन हैं? शिवजी मेरे कौन हैं, यह न जाननेसे शिवजी क्यों नहीं देखनेको मिलते? अगर शिवजी करुणामय हैं, वे सर्व्वशक्तिमान् हैं, वे भक्ताधीन हैं यह न जान कर कोई विपत्तिमें आकर उनको बुलावे, तो क्या शिवजी उसकी पुकार नहीं सुनते? उसका दुःख नहीं मिटाते?

वक्ता। तुमसे एक बात पूछता हूं। कष्ट होनेसे तुम मुझको बुलाती हो, अपनी माँको बुलाती हो, अपने पिताको बुलाती हो, अपने और और आत्मीय जनोंको भी बुलाती हो, पर कहो तो, क्या तुम उनको भी बुलाती हो, जिनसे तुम्हारा परिचय नहीं, जिनके साथ तुम नहीं जानती, कि तुम्हारा कोई सम्बन्ध है? क्या तुम उनसे भी ऐसी प्रार्थना करती हो, कि "मेरा दुःख मिटा दीजिये?" क्या तुम उनको देखना चाहती हो, जिनसे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं?

जिज्ञासु। दादा। आपके मुखसे सुना है, कि 'शिवजी सबके हैं', 'शिवजी सर्वज्ञ हैं', 'ज्ञानी, अज्ञानी, पापी, पुण्यवान्, धनी, निर्धन—सभी उनकी सन्तान हैं', तो फिर क्यों वे ज्ञानहीन सन्तान पर कृपा न करेंगे? जो उनको बुलानेका मार्ग नहीं जानता, जो उनको माता-पिता नहीं समझता,—विश्वमाता, विश्वपिता उस मूढ़ सन्तानको स्वयं ही क्यों नहीं दर्शन देंगे? प्रार्थना न करनेसे भी उसका कष्ट क्यों नहीं मिटायेंगे?

वक्ता । शिवजी सभीके शिवजी हैं, 'सभी उनकी सन्तान हैं', 'वे सर्वज्ञ हैं,' 'वे सर्वशक्तिमान् हैं,' 'वे सब सन्तानको समान दृष्टिसे देखा और पालन किया करते हैं'—यह बात सत्य है, तथा, 'शिवजी भक्ताधीन हैं,' 'भक्त सन्तान उनके प्रियतर होती हैं,' 'भक्तके पुकारनेसे वे उसी वक्त उत्तर देते हैं,' 'भक्त उनको देखना चाहें, तो वे उसी वक्त दर्शन देते हैं,' यह भी बात मिथ्या नहीं है।

जिज्ञासु । ये दोनों बात सत्य हैं ? ये दोनों बात किस तरह सत्य हो सकती हैं, सो मुझे समझा दीजिये ।

वक्ता । ये दोनों बात सत्य हैं, अगर तुम्हें इसे समझाना हो, तो 'शिवजी कौन हैं,' 'शिव' शब्दका अर्थ क्या है, इत्यादि कई एक विषय तुम्हें पहले समझाने पड़ेंगे । 'शिवजी कौन हैं' यह तो तुम नहीं जानती, तुमने तो केवल मेरे मुखसे यही सुना है, कि शिवजी सभीके शिवजी हैं, सभी उनकी सन्तान हैं, पर तुम अद्यापि ठीक ठीक नहीं जानती, कि इन बातोंका यथार्थ अर्थ क्या है । अतः शिवजी कौन हैं, सो पहले सुनो । शिवजी कौन हैं, इसे समझनेके बाद तुम्हारे मनमें जितने प्रश्न उठ रहे हैं, मैं उन सबोंका उत्तर दूंगा ।

———

द्वितीय परिच्छेद ।

शिवजी कौन हैं ? 'शिव' शब्दका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ ; जिनमें सब कोई शयन करते हैं, वही 'शिव' हैं, 'शिव' शब्दके इस अर्थका तात्पर्य्य ; भक्ति ही भगवानको देखनेका सबसे सुलभ साधन है ; 'शम्भव' 'मयोभव' 'शंकर' 'मयस्कर' 'शिव' 'शिवतर' इन शब्दोंके अर्थ ।

जिज्ञासु । शिवजी कौन हैं, सो सुननेके लिये मुझे बड़ा ही कौतूहल हो रहा है ।

वक्ता । स्थायी और प्रकृत कौतूहल होनेसे, यथार्थ जिज्ञासु होनेसे, मङ्गलमय, करुणासागर, विश्वकी नित्य अनुग्रह-शक्ति शिवजीके अनुग्रहसे 'शिवजी कौन हैं' तुम जान सकोगी ।

'शी' धातुसे 'शिव' पद निष्पन्न हुआ है । 'शी' धातुका अर्थ 'शयन करना,' 'निद्रित होना' है । जिनमें सब कोई शयन करते हैं, जिनमें या जिनके द्वारा धृत होकर सब कोई अवस्थान करते हैं, जो सबके आधार हैं, जिनसे सब कुछ उत्पन्न होता है, स्थितिकालमें जिनमें सब कुछ धृत रहता है, लयकालमें जिनमें सब कुछ लीन होता है, वे "शिव" हैं ; अथवा, जो विकाररहित हैं, जिनका कभी किसी प्रकार परिवर्त्तन नहीं होता, जो सदा एक ही भावमें अव-

स्थान करते हैं ; निर्व्विकार हैं इसलिये, सदा शान्त हैं इसलिये जो तरङ्गरहित समुद्रकी नाईं सुषुप्तकी तरह सदा स्थिर भावसे विद्यमान हैं, वह 'शिव' हैं। परिवर्त्तन—(एक भावसे अन्य भाव प्राप्ति) जिसका स्वभाव है वह जगत् जिस स्थिर—ध्रुव आधार पर शयन कर रहता है, वह 'शिव' हैं ("शेते तिष्ठति नन्दरतिभ्यां न विक्रियते—गुणावस्थारहितः शान्तः शिवः शम्भुः ।"—उणादिवृत्ति)। किसी किसीने कहा है, जो अशुभका ह्रास करते हैं, जो अशुभ या अकल्याणको घटा देते हैं, विनाश करते हैं, जो सुखस्वरूप हैं, मङ्गलमय हैं, वह 'शिव' हैं।*

जिज्ञासु। जिनमें जगत् शयन करता और जो स्वयं सर्व्वदा शयन कर रहते हैं, जो सबको धारण कर रखते हैं, जो सुखमय हैं, वह 'शिव' हैं—इन बातोंका अर्थ क्या है सो मेरी समझमें नहीं आता। 'जिनमें सब कोई शयन करते' इसका क्या अर्थ है? हमलोग जिस पर शयन करते हैं, उसे तो शय्या (बिछौना) कहते हैं।

वक्ता। तुम जिसपर शयन करती हो, उस बिछौनेको कौन धारण कर रखता है?

जिज्ञासु। उसे खटिया अथवा भूमि वा पृथिवी धारणकर रखती है।

---

* "श्यति तनूकरोत्यशुभमित्यौणादिकात् श्यतेर्डिवः ।"

—अमरकोष, रघुनाथ-चक्रवर्त्तीकृत-टीका ।

वक्ता। 'भूमि' वा 'पृथिवी' क्या चीज़ है, सो तो तुम नहीं जानती। 'भूमि' वा 'पृथिवी' किनके द्वारा धृत रहती है— इस बातपर चिन्तन करो, इस बातको जाननेकी कोशिश करो।

जिज्ञासु। मैं तो चिन्तन करना नहीं जानती। किस तरह चिन्तन किया जाता है, दादा? चिन्तन करना किसे कहते हैं?

वक्ता। जिस विषयका चिन्तन करना होगा, मनको उसी विषयपर धारण करना होता है, मनको उस विषयपर धारणकर सकनेसे, मन उस विषयसे दूसरे विषयपर जा न सके, इस प्रकार यत्न करनेसे क्रमशः उस विषयका चिन्तन होता है।

जिज्ञासु। किस तरह चिन्तन किया जाता है, चिन्तन करना किसे कहते हैं, सो तो अभीतक मेरी समझमें न आया। इतना समझ सकती हूं, कि मन चञ्चल है, मन सदा ही एक विषयसे दूसरे विषयमें जाया करता है। 'मन' कौनसी चीज़ है, दादा?

वक्ता। यह देखो रमा, किस तरह चिन्ता की जाती है, सो तुम सीख रही हो।

जिज्ञासु। आप कह रहे हैं, कि मैं चिन्तन करना सीख रही हूं, पर मुझे तो समझमें नहीं आ रहा है, कि क्या सीख रही हूं।

वक्ता। मनको एक विषयपर धारण करनेको कोशिश करनेसे, भगवान्‌के नियमानुसार उस विषयकी जिज्ञासा होती है, यह क्या है, यह क्यों है—इस तरहके प्रश्न उस विषयके बारेमें मनमें उठा करते हैं। जो चित्त सदा चञ्चल रहता है, उसमें इस

तरहके प्रश्न नहीं उठते ; जिनका चित्त जितना अस्थिर है, उनकी चिन्ताशीलता उतनी ही कम है। 'चञ्चल मनको स्थिर करनेका उपाय क्या है' सो समझानेके समय तुम्हें चिन्ता करना किसे कहते हैं, मनका स्वरूप क्या है, इन बातोंको समझाऊंगा, इस वक्त जिनमें सब कोई शयन करते, इस 'शिव' शब्दके अर्थका अभिप्राय क्या है, सो सुनो।

जिनमें सब कोई शयन करते, वह 'शिव' हैं, 'शिव' शब्दके इस अर्थका तात्पर्य।

जिज्ञासु। "जिनमें सब कोई शयन करते हैं, वह 'शिव' हैं' 'शिव' शब्दके इस अर्थका तात्पर्य क्या है, सो समझा दीजिये।

वक्ता। जिनमें सब कोई शयन करते हैं, वह 'शिव' हैं यह बात सुनकर तुम्हारे मनमें क्या हो रहा है?

जिज्ञासु। शिवजीको भगवान् कर ही जानती हूं, उनको भगवान् ही समझकर उनकी पूजा करती हूं। पर भगवान् कौनसी वस्तु हैं, सो ठीक ठीक नहीं समझती। जिनमें सब कोई शयन करते, वह भगवान् शिव हैं यह बात सुनकर मेरे मनमें यही हो रहा है कि जब मनुष्य थक जाता है, रोग या दूसरे किसी कारणसे उत्पन्न हुई दुर्बलताके कारण बैठ नहीं सकता, चल नहीं सकता, खड़ा नहीं हो सकता, तब वह शयन करता, विश्राम करता, सो रहता, थका-मादा, कमजोर, बीमार और आराम

चाहनेवाला जिनकी गोदपर शयन करते, जो इन्हें धारण कर रखते हैं, इन्हें सुलाते हैं, वह 'शिव' हैं—क्या यही 'शिव' शब्दका अर्थ है? पर 'शिव' शब्दके इस प्रकार अर्थसे तो शिवजीके (जिन शिवजीको मैं भगवान् समझ पूजा करती हूं) स्वरूपके बारेमें मुझे तृप्तिजनक ज्ञान नहीं हुआ।

वक्ता। जिसमें जो वस्तु धृत होकर रहती है, उसे उस वस्तुका आधार कहते हैं। कार्य्यमात्र ही (जिसका जन्म होता है, जो स्थित रहता है, जिसकी वृद्धि होती है, विपरिणाम होता है, अपक्षय और नाश होता है) किसी न किसी आधारपर धृत होकर रहता है।

जिज्ञासु। कार्य्यमात्र ही किसी न किसी आधारपर धृत होकर रहता है, इस बातका अर्थ क्या है?

वक्ता। कार्य्य पदार्थ किसे कहते हैं, सो समझमें आया है?

जिज्ञासु। जिसका जन्म होता है, जो कुछ काल स्थित रहता है, जिसकी वृद्धि और विपरिणाम होते हैं, जिसका क्रमशः अपक्षय होता है और अन्तमें जो अदृश्य हो जाता है, जो फिर देखनेमें नहीं आता—आपके मुखसे कार्य्यपदार्थके स्वरूपके बारेमें ये बातें सुनी हैं।

वक्ता। क्या इनसे कार्य्यपदार्थके स्वरूपके सम्बन्धमें कुछ धारणा नहीं हुई है?

जिज्ञासु। यही धारणा हुई है, कि हमलोग जिन्हें देखते हैं,

सुनते हैं, अर्थात् इन्द्रियोंके द्वारा जिनको सत् (पदार्थ) कर समझते हैं, वे कार्य्यपदार्थ हैं ।

वक्ता । इसमें सन्देह नहीं कि, जिनका अस्तित्व चक्षुरादि इन्द्रियोंके द्वारा निरूपित होता है, वे कार्य्य पदार्थ हैं । कार्य्य पदार्थ मात्रको स्थूल और सूक्ष्म ये दो अवस्थायें हैं ।

जिज्ञासु । कार्य्यमात्रकी स्थूल और सूक्ष्म ये द्विविध अवस्थायें हैं, इस बातका अर्थ क्या है, सो साफ़ कर कहिये ।

वक्ता । तुमने बहुत बार सुना है और सम्भव है, कि स्वयं भी इस बातका प्रयोग किया करती हो, कि कार्य्यमात्रका कारण है । क्या समझ सकती हो, कि जो व्यक्त होता है, जो अव्यक्त वा सूक्ष्म अवस्थासे इन्द्रियग्राह्य अवस्थामें आता है, उसकी 'अन्तः' और 'वहिः' ये दो अवस्थायें होती हैं ?

जिज्ञासु । जिस अवस्थासे कोई वस्तु इन्द्रियग्राह्य वा स्थूल अवस्थाको प्राप्त होती है, क्या आप उस अवस्थाको 'अन्तः' शब्द द्वारा और व्यक्त—इन्द्रियग्राह्य अवस्थाको 'वहिः' शब्द द्वारा लक्ष्य कर रहे हैं ?

वक्ता । हाँ, महर्षि गोतमने कहा है, कि कार्य्यपदार्थकी 'अन्तः' और 'वहिः' ये दो अवस्थायें होती हैं, जो कार्य्य नहीं है, जो जन्मादिविकार रहित है, उसकी 'अन्तः' और 'वहिः' ये दो अवस्थायें नहीं होतीं, उसकी एकही अवस्था होती है। * जो स्थूल है,

* "अन्तर्वहिश्च कार्य्यद्रव्यस्य कारणान्तरवचनादि कार्य्ये तदभावः" —न्यायदर्शन, ४।२।१८

वह कार्य्य है, जो सूक्ष्म है वह कारण है। जो परम कारण है, जो किसीका कार्य्य नहीं, जिसकी अन्तर्वहिः ये दो अवस्थायें नहीं हैं, सिवा उस पदार्थके और सभी पदार्थकी 'अन्तः' और 'वहिः' ये दो अवस्थायें होती हैं।

जो वास करता है—स्थित रहता है, जिसे वस्तु कहते हैं (जो वास करता है—अवस्थान करता है वह 'वस्तु' है—'वस्तु' शब्दका यही मूल अर्थ है) जिसके अस्तित्वकी उपलब्धि हमलोगोंकी होती है, वह ज़रूर ही किसी आधारशक्ति द्वारा धृत होकर रहता है—इस तरहका ख्याल (विश्वास) हमलोगोंका सहज है। जब कोई किसी पदार्थके चिन्तनमें प्रवृत्त होता है, चाहे वह (पदार्थ) 'भाव' पदार्थ हो या 'अभाव' पदार्थ, तो, 'यह यहाँ पर—इस आधार पर है या नहीं' इस तरह आधारशक्तिकी तरफ उनकी दृष्टि ज़रूर ही पड़ा करती है (इदमेत्रति भावानमभावानां च कल्प्यते।"—मञ्जूषा)।

जिज्ञासु। सब समझ न सकने पर भी इन बातोंको सुनकर मुझे आनन्द हो रहा है। आधारशक्तिका स्वरूप क्या है? किस पदार्थने कार्य्यपदार्थ मात्रको धारण कर रक्खा है? कौनसे पदार्थ द्वारा धृत होकर सारे कार्य्य पदार्थ अवस्थान कर रहे हैं?

वक्ता। भावमात्रकी आधारशक्ति आकाशको आश्रयकी हुई है, आकाशने ही सारे पदार्थको धारण कर रक्खा है।

जिज्ञासु। जिस आकाशने सारे पदार्थको धारण कर रक्खा है, उस 'आकाशका' स्वरूप क्या है?

वक्ता। जिस 'आकाश' नामक पदार्थने सारे पदार्थको धारणकर रक्खा है, उस आकाश पदार्थका स्वरूप समझानेके लिये मैं तुम्हें पहले "वियत्" "व्योम" "वर्हि" और "अन्तरिक्ष" इन चार शब्दोंका (ये ही आकाशके पर्य्याय—आकाशके प्रतिशब्द हैं) अर्थ क्या सो कहूंगा।

जो विरत नहीं होता,—जो सर्वत्र व्याप्त है, उसका नाम "बियत्" है। जो सारे जगत्को व्याप्तकर विद्यमान है, जिसमें सारी वस्तुएं धृत हो रही हैं, जो पदार्थ सबकी रक्षा कर रहा है, उसे "व्योम" कहते हैं। प्राणिगण जिसमें वर्द्धित होते हैं—जो विभु हैं, उसे 'वर्हि' कहते हैं। सब भूतोंके बीच जो शान्त वा निष्क्रियभावसे रहता है, विनाशी—परिणामी—परिवर्त्तनशील वस्तुओंके बीच जो अविनाशी—अपरिणामी—परिवर्त्तनरहित है, उसे 'अन्तरिक्ष' कहते हैं। अगर तुम यथार्थ तत्वजिज्ञासु और मननशील होती, तो 'वियत्' 'व्योम' इत्यादि शब्दचतुष्टयोंके अर्थ जानकर तुम्हारा चित्त आनन्दसे भर जाता, तो तुम्हें मालूम हो जाता, कि एक एक साधु शब्द ही एक एक पूर्ण विज्ञान है, तो तुम्हें विश्वास आ जाता कि जड़-वैज्ञानिकगणने ईथर (Ether), ताप, तड़ित्, आलोक आदि पदार्थोंके तत्वानुसन्धानमें प्रवृत्त हो कर जैसा विपुल परिश्रम स्वीकार किया है, गभीर गवेषणा की है, और वैसाकर इन पदार्थोंके बारेमें जेसा अनुमान किया है, "वियत्" "व्योम" आदि शब्दोंके ऊपर कहे हुए व्युत्पत्तिके गर्भमें ही उस अनुमानका विशुद्ध तथा व्यापकतर रूप विराज रहा

है। 'वियत्' आदि आकाशवाचक शब्दचतुष्टयोंकी व्युत्पत्तिसे मालूम होगा, कि सर्व्वव्यापिनी आधारशक्ति ही 'आकाश' नामक पदार्थ है, छान्दोग्योपनिषद्में कहा गया है, कि "आकाश ही से भूतोंकी उत्पत्ति होती है और आकाश हीमें इनका लय हुआ करता है। स्थावर-जङ्गमात्मक सभी भूतोंकी जब आकाश ही से उत्पत्ति और आकाश ही में लय हुआ करता है, स्थावर-जङ्गमात्मक सभी भूत जब आकाश ही से उत्पन्न और आकाश ही में विलीन हुआ करते हैं, तो जानना होगा कि आकाश ही सबका प्रधान है, आकाश हीमें सर्व्वभूत प्रतिष्ठित हैं।" *

जिज्ञासु। 'आकाश' शब्दका यहाँपर किस अर्थमें प्रयोग हुआ हैं ?

वक्ता। 'आकाश' शब्दका यहांपर परमात्माके वाचकरूपमें प्रयोग हुआ है। ऋग्वेदमें सर्व्वभावके अविभक्त—अखण्डित, अपरिच्छिन्न आत्मा वा परम कारणको जतानेके लिये 'परम व्योम' शब्दका प्रयोग देखा जाता है ("सहस्राक्षरा परमे व्योमन्।"—ऋग्वेदसंहिता।) अथर्व्ववेदसंहिताने कहा है,—व्याकृत वा व्यक्त जगत् ओतप्रोतभावसे जिनमें विद्यमान है, जिस अव्याकृत (अव्यक्त) सूत्रमें बद्ध होकर रहा करता है—जिनने उसे जाना हैं, व्याकृत

---

* "अस्य लोकस्य का गतिरित्याकाश इति होवाच सर्व्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्त आकाशं प्रत्यस्तं यन्त्याकाशो ह्येवैभ्यो ज्यायानाकाशः परायणम्।" —छान्दोग्योपनिषित्।

जगदाधारके आधारको भी जिनने जाना है, उन्होंने ही परब्रह्मका स्वरूप जाना है ("यो विद्यात् सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः। सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात् स विद्यात् ब्राह्मणं महत् ॥"—अथर्ववेदसंहिता १०।८।३७)।

जिज्ञासु। व्याकृत वा व्यक्त जगत् किस अव्याकृत सूत्रमें बद्ध होकर रहा करता है?

वक्ता। किसी दिन ब्रह्मज्ञानेच्छु, प्रातःस्मरणीया गार्गी देवीके पवित्र हृदयमें यह प्रश्न उठा था, परम कारुणिक महर्षि याज्ञवल्क्यके चरण धारणकर एक दिन गार्गीदेवीने उनसे इस तरह पूछा था—भगवन्! सुना है कि कार्य्यमात्रका कारण है, सभी कार्य्य अन्तर्वहिर्भावसे व्यवस्थित हैं। इसलिये जानना चाहती हूं, कि द्युलोकके ऊर्द्ध, भूलोकके अधः, और द्युलोक-भूलोकके मध्य (इन दोनों लोकके अन्तर्व्वर्त्ती भाग) तथा भूत, (अतीत) भवत् (वर्त्तमान) ओर भविष्यत् भावसमूह और एक बातमें कहा जाये तो (सारा) विश्वजगत् किस अव्याकृत सूत्रमें ओत-प्रोत भावसे विद्यमान है?" इसके उत्तरमें महर्षि यागवल्क्यने कहा था—'गार्गि। द्युलोकके उर्ध्व, भूलोकके अधः और द्युलोक भूलोकके मध्य (-वर्त्ती भाग), तथा भूत, भवत् और भविष्यत् (कालमें रहते हुए) भावजात (सारे भाव) जिस अव्याकृत सूत्रमें बद्ध होकर रहा करते हैं, उसका नाम 'आकाश' हैं। गार्गीने फिर पूछा—'जिस आकाशमें व्याकृत जगत् धृत होकर वर्तमान है, हे भगवन्! वह आकाश किस आधारमें ओत-प्रोतभावसे

विद्यमान है ?' इसके उत्तरमें महर्षि याज्ञवल्क्यने जो कुछ कहा था, उसका सार यह हैं कि अक्षर परब्रह्मने ही आकाशको धारण कर रखा है, अक्षर (क्षय रहित) परब्रह्म ही अन्तरतम हैं, ये ही सब कार्य्यके परम कारण हैं, निर्व्विशेष परमात्माके गर्भहीमें सारे कार्य-पदार्थ धृत हुए हैं।*

"जिनमें सब कोई शयन करते हैं, वह 'शिव, हैं" 'शिव' के इस अर्थका तात्पर्य अब तुम कुछ समझ सकोगी।

कार्य्यपदार्थमात्रके जो आधार हैं, उन्हींमें सब कोई शयन करके रहते हैं, वे ही सारे पदार्थको धारण करके रखते हैं। भगवान् शंकराचार्य्यने कहा है—'देखनेमें आता है, कि जो कार्य्य है, जो परिच्छिन्न है, जो स्थूल है, वह कारण द्वारा व्याप्त है; पृथिवी जल द्वारा, जल अग्नि द्वारा, अग्नि वायुद्वारा और वायु आकाश द्वारा व्याप्त है। जो पदार्थ जिसका आदि और लयस्थान है, वही उसका मध्यस्थान—उसकी मध्यावस्था है। भूतपञ्चक सत्य है, परमात्मा सत्यके सत्य हैं (यत् कार्य्यं परिच्छिन्नं स्थूलं कारणेना परिच्छिन्नेन सूक्ष्मेण व्याप्तमिति दृष्टम्। यथा पृथिव्यद्भिस्तथा पूर्व्वं पूर्व्वमुत्तरेणोत्तरेण व्यापिना भवितव्यमित्येव * * * तत्र भूतानि पञ्च संहतान्ये चोत्तरोत्तरं सूक्ष्मभावेन व्यापकेन कारणरूपेण च व्यवतिष्ठन्ते। सत्यञ्च भूतपञ्चकं सत्यस्य सत्यं च पर-

---

* तस्मिन्नु खल्वक्षरे गार्ग्याकाश ओतप्रोतश्चेति।

—बृहदारण्यकोपनिषत्।

मात्मा । ”—शंकरभाष्ये) । अतः ‘जिनमें सब कोई शयन करते हैं, वह शिव हैं’ इस बातका अर्थ यही है, कि जो सर्व्वकार्य्यके परम-कारण हैं, जो सबके परम आधार हैं, जिनमें सारे पदार्थ धृत होकर रहते हैं, जिनसे सब कार्य्य-पदार्थों की उत्पत्ति होती है, लयकालमें जिनमें सारे कार्य्य-पदार्थ लीन होते हैं, अर्थात् जो विश्वकी सृष्टि-स्थिति तथा लयके कारण हैं, वह ‘शिव’ हैं ।

जिज्ञासु । मालूम हुआ कि जो बुद्धिमान् और भाग्यवान् हैं, वह ‘शिव’ शब्दके इस अर्थसे हो शिवका स्वरूप जान सकते हैं, पर मेरी बोधशक्ति बहुत ही कम हैं, ‘शिव’ शब्दकी इस व्याख्या-को सुनकर भी, ‘जिनमें सब कोई शयन करते’ इस बातका यथार्थ अभिप्राय क्या है, सो पूर्णतया मेरे अनुभवमें नहीं आ रहा है ।

वक्ता । बिना यथोपयुक्त साधनके किसी विषबकी सिद्धि नहीं हो सकती । अन्तःकरणकी शुद्धि ही भगवान्‌को जाननेका भगवानको पानेका मुख्य साधन है । पापका क्षय न होनेसे भगवान्‌में भक्ति नहीं होती । तुम जो पूजा किया करती हो, वह यथार्थ पूजा नहीं हैं । अगर यथार्थ रूपसे पूजा करनी हो, तो क्या करना चाहिये, सो मैं तुम्हैं समझा देता हूं । नारदजीने कहा है—भगवान्‌को पानेके जितने साधन हैं, उनमें भक्ति ही सबसे सुलभ है (अन्यस्मात् सौलभ्यँ भक्तौ ” ...नारदभक्तिसूत्र ५८) जिनके हृदयमें भक्तिका उदय नहीं हुआ हैं, वह कभी “जिनमें सब कोई शयन करते हैं, वह शिव हैं” इस बातका यथार्थ अभिप्राय क्या है सो जान नहीं सकते ।

जिज्ञासु। किस तरहसे भगवान्में भक्ति होती है ? भक्तिका साधन क्या हैं ?

वक्ता। 'भक्तियोग साधन' नामक सम्भाषणमें मैं तुमको यह बात समझा दूंगा। भगवान्का तथा उनके भक्तवृन्दका अनुग्रह ही असलमें भगवान्में भक्ति होनेका मुख्य साधन है। श्रुति तथा पुराणादि शास्त्र पाठ करनेसे जाननेमें आता है, कि भगवान्की अनुग्रह-शक्ति ही 'गुरु' हैं। भगवान्की कृपाही उनको पानेका एकमात्र उपाय है। जब तुम जान सकोगी, कि "जिनमें सब कोई शयन करते हैं, वह 'शिव' है" इस स्वल्पाक्षरात्मक वाक्य-गर्भमें कितने अमूल्य रत्न विराज रहे हैं, तब तुम कृतार्थ हो जाओगी। सोचकर देखो, कि कौन सबको धारण कर रखनेमें समर्थ हैं? सोचकर देखो, कि संकटमें पड़नेसे कौन संकटसे मुक्त कर सकते हैं? दुःख दूर करनेकी शक्ति किनमें है? लौकिक चिकित्सकों द्वारा परित्यक्त रोगीको कौन् रोगमुक्त कर सकते हैं? जीव दुःखके हाथसे छुटकारा पानेके लिये वास्तवमें किनकी शरण लेना चाहता है? किनके चरणोंमें 'मैं तुम्हारा' कह कर बारंबार नमोनमः करना चाहता हैं? इन प्रश्नोंके उत्तरमें श्रुतिने कहा है—'शम्भवके' 'मयोभवके' 'शंकरके' 'मयस्करके' 'शिवके' ("नमः शम्भवाय च, मयोभवाय च, नमः शंकराय च, मयस्कराय च, नमः शिवाय च, शिवतराय च।" (शुक्लयजुर्व्वेद-संहिता, १६ अध्याय)।

जिज्ञासु। 'शम्भव' 'मयोभव' 'शंकर' 'मयस्कर' 'शिव' 'शिवतर' इन शब्दोंका अर्थ क्या है ?

वक्ता। जिनसे सुखकी प्राप्ति होती है, बाधा हट जाती है, वह 'शम्भव' हैं, अथवा जो सुखरूप—मुक्तिरूप हैं और जो भव वा संसाररूप हैं, वह 'शम्भव' हैं। मय शब्दका अर्थ 'सुख' है; जिनसे 'मय' (सुख) की उत्पत्ति होती है, वह 'मयोभव' हैं। महीधरने कहा है—जो संसारसुखप्रद हैं, वह 'मयोभव' हैं। जो लौकिकसुखकर हैं, वह 'शंकर' हैं; जो मोक्षसुखकर हैं, वह 'मयस्कर' हैं। भगवान लौकिक—परिच्छिन्न सुखके दाता हैं, फिर, शास्त्रादि रूपसे ज्ञानप्रद हैं, इसलिये मोक्षसुखकारी हैं। महीधरके मतमें 'शिव' शब्द कल्याणरूप, निष्पाप, इस अर्थका, और 'शिवतर' शब्द अत्यन्त शिव इस अर्थका वाचक है। वह भक्तोंको निष्पाप करते हैं—विमल करते हैं, इसलिये भगवान 'शिवतर' हैं। उव्वटके मतमें 'शिव' शब्द शान्त—निर्व्विकार, और 'शिवतर' शब्द अधिक—निरतिशय सर्व्वज्ञवीज इस अर्थका बोधक है।*

---

* "शं सुखं भयत्यस्मादिति शम्भवः। यद्वा शं सुखरूपश्चासौ भवः संसाररूपश्च मुक्तिरूपो भवरूपश्च तस्मै। मयः सुखं भवत्यस्मान्मयो भवः संसारसुखप्रदः तस्मै। शं लौकिकं सुखं करोति शंकरः तस्मै। मयो मोक्षसुखं करोति मयस्करः तस्मै। * * *।"

"शिवः कल्याणरूपो निष्पापः तस्मै। शिवतरोऽत्यन्तं शिवो भक्तानपि निष्पापान् करोति तस्मै।"

—महीधर भाष्य।

"नमः शिवाय च शिवतराय च—शिवः शान्तो निर्व्विकार। शिवतरस्ततोऽप्यधिको निरतिशयः सर्वज्ञबीजः।" —उव्वट भाष्य।

बात यह ठहरी, कि जो सांसारिक सुखके देनेवाले हैं, जो दारिद्र्य, रोग आदि सांसारिक बाधायें दूर करते हैं तथा जो ज्ञान और भक्ति देकर संसारसे मुक्त करते हैं, अपरिच्छिन्न वा नित्य सुखसे सुखी करते हैं, त्रिविध दुःखकी अत्यन्त निवृत्ति कर देते हैं, वह 'शिव' हैं, वह 'शम्भु' हैं, वह शंकर हैं, वह 'मयोभव' हैं, वह 'मयस्कर' हैं।

"जो सांसारिक सुखके देनेवाले हैं, जो दारिद्र्य, रोग आदि सांसारिक बाधायें दूर करते हैं, तथा जो ज्ञान और भक्ति देकर संसारसे मुक्त करते हैं, अपरिच्छिन्न सुखसे सुखी करते हैं, वह 'शिव' हैं—इन बातोंको सुनकर तुम्हारे मनमें क्या हो रहा है?

जिज्ञासु। इन बातोंका तात्पर्य क्या है, सो अच्छी तरह मेरे समझमें नहीं आ रहा है। इतना समझमें आता है, कि धनाभाव, रोग आदि दुःखके कारण हैं; इसमें सन्देह नहीं, कि धनका अभाव मिट जानेसे तथा रोगसे मुक्त होनेसे सुख होता है। पर मैं कैसे इस बातका अर्थ समझ सकूँ, कि शिवजी सांसारिक सुखके देनेवाले हैं और वह अपरिच्छिन्न वा नित्य सुखके भी विधाता हैं? दुःखकी अत्यन्त-निवृत्ति अबतक कभी हुई नहीं, अपरिच्छिन्न वा नित्य सुखका दर्शन कभी मिला नहीं, मैं जानती नहीं, कि अपरिच्छिन्न वा नित्य सुख कैसी चीज़ है? "शिवजी धनका अभाव दूर करते हैं", "शिवजी व्याधिकी यातना निवारण करते हैं"—ये बातें मेरे पास अर्थशून्यसी ही मालूम पड़ती हैं। मुझे यह ख्याल नहीं हो रहा है, कि ये झूठी बातें हैं, पर इनके अर्थ क्या हैं, सो

मैं समझ नहीं सकती। यह जानती हूं, कि मनुष्य विद्या, व्यवसाय (व्यापार) कृषिकार्य्य (खेती) शिल्प आदि द्वारा धन कमाते हैं, वैद्यके दिये हुए औषधि सेवनकर रोगमुक्त होते हैं, पर, शिवजी सर्व्वप्रकार दुखका नाश करते हैं, शिवजी सांसारिक सुखके देने-वाले हैं और वे ही अपरिच्छिन्न सुखके भी देनेवाले हैं—यह बात समझनेका भाग्य मेरा अभी तक उदय नहीं हुआ है। शिवजीको तो कभी देखा नहीं, केवल आपके मुखसे "शिवजी धनका अभाव दूर करते हैं, रोगका क्लेश मिटा देते हैं, शिवजीकी सर्व्वाधार गोदपर सब कोई शयन करते हैं। स्नेहमयी जननी जिस तरह शिशु सन्तानको गोदमें लेकर सुलाती है, शिवजी भी उसी तरह सब सन्तानोंको यथाकाल गोदमें लेकर सुलाते हैं" इन बातोंको सुनती हूं, पर क्या किसी बातको सुनने ही से उसका यथार्थ ज्ञान हो सकता है?

वक्ता। तुम्हारी बात सुनकर मुझे आनन्द हुआ। अच्छा, तुम कह सकती हो, जो कुछ सुननेमें आता है, किस तरह उसके यथार्थ अर्थका ज्ञान होता है? "जिनमें सब कोई शयन करते हैं, वह 'शिव' हैं, "जो हर प्रकारके दुःखके नाश करनेवाले और सर्व्व प्रकारके सुखके देनेवाले हैं, जो अज्ञानान्धकारको दूर कर ज्ञानालोक प्रदान करते हैं, जो मृत्युञ्जय हैं—मरणसागरमें जो अमृतस्वरूप हैं, जो सर्व्व कार्य्योंके परम कारण हैं, जो सबके आधार हैं, जो सदा सबके अन्दर और बाहर विद्यमान हैं, जो स्वयं अपापविद्ध हैं और जो भक्तोंको निष्पाप करते हैं, वह 'शिव' हैं",—कह सकती

हो, कि किस तरह इन बातोंके तात्पर्य्यकी उपलब्धि की जा सकती है ?

जिज्ञासु। मैं किस तरह यह कह सकती हूं, दादा ?

वक्ता। पर, इतना तो तुम्हें ख्याल होता है, कि ये मिथ्या या असम्भव बातें नहीं हैं ? अच्छा, कहो तो, क्या कारण है, कि तुम इन्हें मिथ्या या असम्भव कह कर उड़ा नहीं दे सकती ?

जिज्ञासु। शास्त्र मिथ्या या असम्भव बातें क्यों कहेंगे ? जो शास्त्रमें है, क्या वह कभी मिथ्या हो सकता है ? आप जिन बातोंको सत्य जानकर, परम हितकर जानकर मुझे सुना रहे हैं, क्या वे मिथ्या हो सकती हैं ?

वक्ता। शास्त्र कभी मिथ्या नहीं कह सकते, यह तुम्हारा निश्चय किस तरह हुआ, रमा ?

जिज्ञासु। इसीलिये, कि मैंने आपकी कृपाकणा पायी है। मैंने बहुत बार सुना है, कि 'वेद', 'सत्य', 'ब्रह्म', और 'भगवान', ये एक ही पदार्थ हैं। जो सत्यमय हैं, जो मिथ्या-ज्ञानका नाश किया करते हैं, सत्यज्ञान देनेके लिये ही जिनका आविर्भाव है, क्या वह कभी मिथ्या बोल सकते हैं ? झूठ बोलनेका उनका कौनसा प्रयोजन हो सकता है ?

वक्ता। मैं सर्व्वान्तःकरणसे आशीर्व्वाद देता हूं, कि करुणामय ज्ञान और प्रेममय शिवजीकी कृपासे तुम्हारे हृदयमें यथार्थ शिवभक्तिका उदय हो, 'शिव कौन हैं' सो शिवजीकी कृपासे तुम

यथार्थ रूपसे जानो। बिना शिवजीकी कृपासे कोई भी उनको विशुद्धरूपसे, पूर्णतया जान नहीं सकता।

संसारमें आस्तिक और नास्तिक ये दोनों ही बराबरसे हैं; युगभेदके कारण संख्यामें तारतम्य (घटती-बढ़ती) होनेपर भी इन दोनोंके बीच किसीका एकबारगी अभाव नहीं होता, प्राकृतिक नियमसे हो नहीं सकता। जो कहते हैं कि ईश्वर-विश्वास तथा 'शरीरात्माके पश्चात् अन्तरात्मा हैं; देवता लोग हैं, स्तव और उपहारादिके द्वारा उनको प्रसन्न करनेसे वे मनुष्योंका उपकार करते हैं, अप्रसन्न होनेसे अनिष्ट किया करते हैं; ईश्वरकी शरण लेनेसे मनुष्यका सब प्रकारके दुःखका अवसान होता है, जो जो उसके प्राप्तव्य हैं, सब उसे मिल जाते हैं, उसको किसी विषयका अभाव नहीं रह जाता' इस प्रकारका विश्वास मनुष्यकी प्रथमावस्था—असभ्य वा अर्द्ध सभ्यावस्थामें ही हुआ करता है, ज्ञानकी वृद्धिके साथ इस प्रकारका विश्वास विचलित होता है और क्रमशः विलुप्त हो जाता है—इसमें कोई भी सन्देह नहीं, कि इन लोगोंके इस प्रकारका मत विशुद्ध तथा व्यापक सन्दर्शन और परीक्षासे नहीं उत्पन्न हुआ है। ये लोग जिस अवस्थाको सभ्यावस्था कहते हैं, उस अवस्थामें रहते हुए कृतविद्य और सुतीक्ष्णबुद्धिसम्पन्न पुरुषोंके बीच भी कितने आस्तिक पुरुष देखनेमें आते हैं, कितने ऐसे पुरुष मिलते हैं जो ईश्वरके अस्तित्व पर पूर्णतया विश्वासवान् हैं। अतः सिद्धान्त यही होता है, कि कर्म अनादि है, कर्म्मभूमि भी अनादि है, जगत्‌की सृष्टि, स्थिति और

लय—ये प्रवाहरूपसे नित्य हैं, जिस तरह बीजसे अंकुर, अंकुरसे वृक्ष, वृक्षसे फल, और फलसे फिर बीजकी उत्पत्ति होती है, जिस तरह बीजसे अंकुर आदिकी उत्पत्तिके प्रवाहका कभी एकवारगी उच्छेद नहीं होता, उसी तरह जगत्के विकाश और विनाश वा लय प्रवाहरूपसे नित्य हैं, इनका भी कभी एकवारगी उच्छेद नहीं होता। संसारमें उन्नतिके बाद अवनति (पर्य्यायक्रमसे) हुआ करती है। जो वास्तवमें सत् है, जो वस्तुतः विद्यमान है, उसका कभी एकवारगी अभाव नहीं होता और जो वस्तुतः असत् है—जो वास्तवमें है ही नहीं, उसकी कभी उत्पत्ति (वा सद्भाव) हो नहीं सकती। अतः "ईश्वरविश्वास वा आस्तिकता असभ्यावस्था की सामग्री है, यह सभ्यावस्थामें रह नहीं सकती" यह मत अदूरदर्शितासे, असम्पूर्ण दर्शन और परीक्षासे ही जन्मलाभ किया है। भगवद्भक्त और भगवद्विमुख, संसारमें ये दोनों ही देखनेमें आते हैं, ये पहले भी थे, भविष्यमें भी रहेंगे; पर सत्त्व, रजः और तमः इन गुणात्रयके आविर्भाव तिरोभाव हुआ करते हैं, कभी उन्नति होती है, कभी अवनति होती है, गुणकर्मके विभागानुसार आविर्भाव और तिरोभाव हुआ करते हैं। जिसे एक व्यक्ति स्वभावतः अनायास ही समझ सकते हैं, उसे दूसरा व्यक्ति बहुत क्लेश उठानेपर भी समझ नहीं सकते। जिनकी जैसी प्रतिभा वा संस्कार है, वे वैसाही हुआ करते हैं, पूर्वकर्म्मसंस्कारके अनुसार ही बुद्धिका भेद तथा प्रवृत्ति और रुचिका भेद हुआ करते हैं। अतः जिनकी जैसी प्रतिभा है, उनका

वैसा होना ही स्वाभाविक नियम है। जो होता है, वह क्यों होता है—क्या सभी इसे यथार्थरूपसे जानना चाहते हैं? क्या सभी विशुद्धरूपसे तत्वविचार करनेमें समर्थ हैं? देश, जाति और व्यक्तिके भेदसे बुद्धि, विश्वास, धर्म्म, अधर्म आदिके भेद होते हैं; यह बात मिथ्या है? पर क्यों ऐसा होता है, क्या सभी इसे यथार्थरूपसे जाननेकी कोशिश करते हैं?

'शिव' कौन हैं, विशिष्ट प्रकृतिकी प्रेरणासे किसी किसीकी इसे जाननेकी प्रवल इच्छा होती है, शिवजीका स्वरूप जाननेके लिये कोई कोई जी-जानसे कोशिश करते हैं, फिर ऐसे भी पुरुष मिलते हैं, जो इनको जाननेका कोई प्रयोजन ही नहीं समझते, और जो शिवजीका तत्वानुसन्धान करते हैं, उनको 'यह व्यर्थ ही श्रम कर रहा है, जिसे कर कुछ लाभ नहीं ऐसा काम कर रहा है' ऐसा कह कर उपहास करते हैं। जो विचारशील हैं, जो वस्तुतः जीवित हैं, वह किसी कार्य्यका कारणानुसन्धान किये बिना रह नहीं सकते। विचार करनेकी प्रवृत्ति, साधुभावसे विचार करनेकी शक्ति सबकी एक तरहकी नहीं होती, यह पूर्व्ववासना-वा-अभ्यासजनित संस्कारानुसार, गुणभेदके कारण भिन्न हुआ करती है।

"जिनमें सब कोई शयन करते हैं, वह शिव हैं" जो हर प्रकारके दुःखको दूर करते हैं, सांसारिक और पारमार्थिक इन द्विविध सुखके ही देनेवाले हैं, जो ज्ञान-भक्ति देकर निष्पाप कर मनुष्यका सर्व्व प्रकार कल्याण करते हैं, जो कल्याणमय हैं, जो धनका

अभाव मिटा देते हैं, जो रोगकी यातना निवारण करते हैं, वह 'शिव' हैं—ये बातें सारगर्भ हैं या उन्मत्तके प्रलाप हैं, ज्ञान विरुद्ध हैं, वा युक्ति-हीन बातें हैं, इस विषयपर यथार्थरूपसे विचार करनेकी शक्ति जिनमें है, वही इन बातोंको सुनकर (इन पर) विचार करनेमें प्रवृत्त होंगे।

जिज्ञासु। आपकी अनन्त कृपासे मैं अब अनेक दुर्बोध्य विषय समझ रही हूं। अब कृपा कर मुझे ऐसा उपदेश प्रदान कीजिये, जिससे मैं यथार्थ रूपसे अनुभव कर सकूं, कि शिवजी ही वस्तुतः सुखमय हैं, शिवजी ही सब प्रकारके दुःखके हरण करनेवाले और सब प्रकारके सुखके देनेवाले हैं। सुखमय, दयामय, सर्व्वज्ञ, सर्व्वशक्तिमान शिवजी ही रोगार्त्तके भिषक् हैं, वे ही भवरोग वैद्य हैं, वे ही अकिञ्चनके सर्वस्व हैं, और दरिद्रके नित्य कोषागार हैं।

तृतीय परिच्छेद।

शिवजी ही वस्तुतः कल्याणमय हैं, सुखमय, दयामय, सर्व्वशक्तिमान शिवजी ही रोगार्त्त के भिषक् भवरोगवैद्य हैं, और वे ही अकिञ्चनके सर्वस्व हैं वे ही दरिद्रके नित्य कोषागार हैं ;

वक्ता। इसमें सन्देह नहीं कि "शिव" कौन हैं, सो न जाननेसे शिवजी धनका अभाव दूर करते हैं व्याधिकी यातना निवारण करते हैं, शिवजी सांसारिक सुखके देनेवाले हैं, शिवजी ही अपरिच्छिन्न वा नित्य सुखके भी देनेवाले हैं,—ये बातें अर्थ-शून्य सी ही प्रतीत होंगी। अल्पज्ञ, स्थूलदर्शी, विचारविहीन, मनुष्य यही जानते, और यही विश्वास करते हैं, कि मनुष्य विद्या, व्यापार, कृषिकार्य, शिल्प आदि द्वारा धन कमाते हैं, वैद्यकी दी हुई औषधि सेवन कर रोगमुक्त होते हैं, पर वे एकवार भी नहीं सोचते, कि जो विद्या, व्यापार आदि (पदार्थ) सुखके कारण कर साधारणमें समझे जाते हैं उन विद्या, व्यापार आदि पदार्थोका स्वरूप क्या है, उनके आद्य प्रसूति कौन हैं ? शिवही वास्तवमें शिव हैं, उन्हींसे सारी विद्याका आविर्भाव हुआ है; शिव ही रोगार्त्त के भेषज हैं, वे ही रोगहर भेषजोंकी सृष्टि करते हैं, सर्व्वकार्य्यके

परम कारण, कल्याणमय, सर्व्वाधार शिवहीमें सब कोई शयन करते, शिव ही बुद्धिरूपसे तथा हिताहित-विवेकशक्ति-रूपसे जीवके हृदयमें निवास करते हैं, शिव ही सर्व्वकर्म्मप्रसविता हैं—अगर इन बातोंको समझाना हो, तो बहुत बातें कहनी पड़ेंगी, अगर इन बातोंको समझना हो, तो पहले प्रतिकूल संस्कार राशिको बदलना पड़ेगा, तत्वविचारका यथार्थ मार्ग दिखाना पड़ेगा, व्यवहारिक तथा पारमार्थिक इन द्विविध सत्यके रूप सामने धारण करने पड़ेंगे। मैं क्रमशः इन सबको करनेकी चेष्टा करूंगा, तुम सावधान होकर मेरी बातें सुनती रहो।

'विचार' के संबन्धमें दो एक बात।

अन्नपूर्णा उपनिषद्में, पद्मपुराणमें, योगवाशिष्ठ रामायणमें विचारकी बहुत प्रशंसा और विचारविहीनको बहुत निन्दा की गयी है। अन्नपूर्णा उपनिषद्में तथा पद्मपुराणमें उक्त हुआ है—जिसका चित्त सर्व्वदा विचारपर नहीं है, उसको मृत हो समझना, वह श्वास, प्रश्वास, आहार आदि जीवित पुरुषके कर्म्म करनेपर भी वास्तवमें जीवित नहीं है, उसका जोवन निरर्थक है। *

---

* "गच्छतस्तिष्ठतो वापि जाग्रतः स्वपतोऽपिवा न विचारपरं चेतो यस्यासौ मृत उच्यते॥"—अन्नपूर्णोपनिषत्।

"गच्छतस्तिष्ठतो वापि जाग्रतः स्वपतोऽपि वा। न विचारपरं चेतो यस्यासौ मृत एव च॥"—पद्मपुराण, पाताल खण्ड, ९९ अध्याय।

जिज्ञासु। विचारकी बहुत प्रशंसा आपके मुखसे सुनीं है। विचार किसे कहते हैं सो नहीं जानती, अतः विचारविहीनकी क्यों इतनी निन्दा की गयीं है सो समझ नहीं सकती।

वक्ता। सच है, कि विचार किसे कहते हैं सो तुम ठीक २ जानती नहीं, तोभी विशुद्ध और पूर्णरूपसे न होनेपर भी तुम विचार किया करती हो। जो व्यक्ति चलते समय, बैठते समय, जागरण या निद्रावस्थामें विचार नहीं करता, वह मृत है—जब तुम्हें मालूम होगा, कि यह बात कितनी सारगर्भ है, तब विचार कौनसा पदार्थ है तुम पूर्णरूपसे जानोगी, तब तुम ही कहोगी। "जिसका चित्त सर्व्वदा विचारपर नहीं है, वह 'मृत' है" यह बात यथार्थ है, बहुत ही सारगर्भ है।

जिज्ञासु। 'विचार' कौनसा पदार्थ है, किस तरहसे यथार्थरूपसे विचार किया जा सकता है सो सुननेकी इच्छा हो रही है। मालूम होता है कि यदि शिव कौन हैं जानना हो तो पहले विचार पदार्थके बारेमें कुछ सुनना आवश्यक है; अगर ऐसा न होता, तो 'शिव कौन है" यह बात समझनेमें प्रवृत्त होकर आप विचारकी बात नहीं उठाते।

वक्ता। शिव कौन हैं, केवल यह बात जाननेके लिये ही क्यों, ऐसा कोई भी बिषय नहीं, जिसके स्वरुपका बिना 'विचार निर्णय हो सकता है। विचार ही साधुओंकी गति हैं बिचार न करनेसे मोहभङ्ग नहीं होता, अज्ञानका नाश नहीं होता। सिवाय बिचारके विद्वानोंका और कोई उपाय नहीं, साधुगणकी बुद्धि बिचारके बल

से ही अशुभको त्याग देकर शुभको प्राप्त हुआ करती है, विचार द्वारा ही धीमानोंके बल, बुद्धि, तेजः, प्रतिपत्ति, क्रियानुष्ठान और उसका फल, ये सब सफलताको प्राप्त होते हैं ; क्या युक्त हैं, क्या अयुक्त है, क्या सत्य है, क्या मिथ्या है, इन्हें निश्चय करनेके मार्ग पर विचार महादीपस्वरूप है। यथोचित विचारशक्तिके अभावके कारण ही मनुष्य शिवजीका स्वरूप जान नहीं सकता; जिनसे यथार्थ कल्याण होता है, जो ही वस्तुतः कल्याणमय हैं, मनुष्य उनको जानना नहीं चाहता, उनको जाननेका प्रयोजन नहीं समझता दुर्भाग्यवश जो नास्तिक हैं, जो सर्व्वशक्तिमान्‌को, सर्व्वशक्तिके केन्द्रभवनको त्याग देकर, परिच्छिन्न सुखके लिये, क्षुद्र वा परिच्छिन्न शक्तिकी उपासना करते हैं, उनको भी मानना पडा है, कि केवल विचार द्वारा ही दुर्व्विज्ञेय जगतके रहस्यका भेद होता है, विचारशक्ति ही मनुष्यका सर्व्वोत्कृष्ट दान है, असाधारण अधिकार है, यही मनुष्यको इतरजीवोंसे विशेषित करता है। * खेदके साथ कहना पड़ता है, कि विचारका विशुद्ध वा पूर्णरूप इन्होंने भी देखा नहीं है। अगर देखे होते तो ये नास्तिक नहीं होते,

---

* "By reason only can we attain to a correct knowledge of the world and a solution of its great problems. Reason is man's highest gift, the only prerogative that essentially distinguishes him from the lower animals."

The Riddle of the Universe by E. Haeckal, P. 6.

तो, ये बिना आपत्ति इस बातको स्वीकार करते कि शिव ही वस्तुतः शिव हैं, शिव ही विचारशक्तिकी मूल प्रसूति हैं, शिव ही सर्व्वप्रकार सुखके दाता हैं, शिव ही विश्वके ध्रुव आधार—अविचालि-विश्रामस्थल हैं। इसमें सन्देह नहीं, कि तुम सुनकर आश्चर्य्य मानोगी, ख्याल करोगी, कि मैं कुछ अवोध्य नयी वात कह रहा हूं, तो भी, किसी दिन इससे तुम्हारा परमोपकार होगा ख्याल कर कहता हूं, कि—वेद ही से विचारशक्तिका स्फुरण तथा प्रसारण होता है, वेद ही विचारशक्तिका केन्द्रभवन हैं। वेद विश्वकी प्राणशकि हैं, वेद ही विश्वके मल वा हिरण्यगर्भ हैं। इसीलिये महीधरने कहा है,—शिव शास्त्रादिरूपसे ज्ञान प्रदान करते हैं, वेद-शास्त्रमय शिवजीका ज्ञानप्रदत्व ही मोक्षसुखकारित्व है, शिवजी वेद-शास्त्र द्वारा अज्ञानको हटाकर मोक्षप्रद ज्ञान दान करते हैं, इसीलिये उनका मोक्षसुखकारित्व सिद्ध होता है ("शास्त्रादिरूपेण ज्ञानप्रदत्वात् मोक्षसुखकारित्वमित्यर्थः"—शुक्लयजुर्व्वेदभाष्य)।

बिना विचार ज्ञान नहीं होता, विचारशक्ति वेद वा शिवसे स्फुरित होती है, सम्प्रसारित होती है, जिस तरह किसी जलाशयमें लोष्ट्रादि फेंकनेसे चक्राकार गति उत्पन्न होते होते अन्तमें वह तटको पहुंचती है, उसी तरह सर्व्वगत—सर्व्वव्यापक संवित्—चित्शक्ति प्राणस्पन्दन द्वारा चित्तभूमि पर तरङ्ग उत्पादन करती है; इससे विचारशक्तिका स्फुरण होता है, सम्प्रसारण होता है। वेद वा शब्दकी 'परा,' 'पश्यन्ती,' 'मध्यमा' और

'वैखरी' ये चार प्रकारकी स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, और सूक्ष्मतम अवस्था हैं। ऋग्वेदमें कहा गया है,—वेद वा शब्दकी परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी इन चार अवस्थाओंके बीच वैखरी अवस्थाके साथ ही साधारण मनुष्योंका परिचय है, वेदकी जो और तीन अवस्था हैं वे गुहानिहित हैं—साधारण (लोगोंके) पास अप्रकाशित हैं। सिवाय मनीषी—सुतीक्ष्ण, विशुद्ध प्रज्ञावाले योगवित् वा यथार्थ वेदवित् ब्राह्मणगणके और किसीके ज्ञाननेत्र पर वेद वा शब्दकी परादि चार अवस्था पड़ती नहीं। * जगन्माता सीतादेवीको क्यों सर्व्ववेद-शास्त्रमयी कहा गया है, क्यों ब्रह्मविद्या-स्वरूपिणी कहा गया है, क्यों आन्वीक्षिकी विद्या कहा गया है, सो मैं तुम्हें 'सीतातत्त्व' नामक सम्भाषणमें समझा रहा हूं। अतः विचारतत्त्वके बारेमें यहां अधिक कहना निष्प्रयोजन है। शिव ही सर्व्वप्रकार सुखके देनेवाले हैं, शिव ही सारी बाधायें दूर कर सबको शान्ति देनेवाले हैं, शिव (परमात्मा) ही विश्वकी सृष्टि, स्थिति और लयकर्त्ता हैं, शिव ही अनुग्रहशक्ति—जगद्गुरु हैं, जगत्के अज्ञानान्धकारके हन्ता हैं, सर्व्वमङ्गलमय, सर्व्वशक्तिमान, करुणामय, प्रेममय, सर्व्वज्ञ शिवही नित्य तथा अनित्य धनके देनेवाले हैं, आधि-व्याधिके नाश कर्त्ता शिवही भवरोग वैद्य हैं—अगर इन बातोंको पूरे तौरसे समझना हो, तो विचार-

---

* "चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति॥"
—ऋग्वेद संहिता, १।१६४।४५।

शक्तिका तत्व पूर्णरूपसे अवलोकन करना ही पड़ेगा, वेदका स्वरूप देखनाही पड़ेगा। विचार ही अन्तर और वाह्य जगत्का मूल कारण है। अथर्व्ववेदने कहा है,—'जो आन्तर है, वही वाह्य है, जो वाह्य है, वही आन्तर है।" इसमें कोई सन्देह नहीं, कि आन्तर जगत्ही वाह्य जगत्का आकार धारण करता है। आधुनिक वैज्ञानिकोंके बीच किसी-किसी धीमान्ने अनुभव किया है, कि इच्छाशक्ति ही सर्व्वप्रकार स्थूल शक्तिका मूल है, विचारशक्ति ही आन्तर और वाह्य जगत्की आद्यशक्ति है। आशा होती है कि भविष्यमें किसी दिन विचारशील आधुनिक वैज्ञानिकोंके बीच किसी किसीको "शब्द वा ब्रह्मसे विश्वजगत्की सृष्टि हुई है, देवतालोग भी शब्द वा वेद प्रसूत हैं" इस परम-सत्यका रूप देखनेमें आवेगा और देख कर वे कृतकृत्य होंगे। पहले ही कह चुका हूं, कि ये बातें तुम्हारी समझमें नहीं आवेंगी, अथवा केवल तुम्हारी ही क्यों, मेरे ख्यालमें आजकल ऐसे पुरुष कम मिलेंगे, जिनका इन बातोंका मूल्य कितना है उसे, यथार्थ-रूपसे निश्चय करनेका सामर्थ्य है। जप, ध्यान, भक्तिपूर्व्वक एकाग्रचित्त होकर स्तवादिका पाठ—इन सभोंसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है, मन्त्रशक्ति द्वारा अनावृष्टि, अतिवृष्टि आदि आधि-दैविक दुःखोंकी शान्ति होती है—ये बातें सत्य हैं, ये मिथ्या वा कल्पनामूलक नहीं हैं। जिस प्राकृतिक नियमके अनुसार स्थूल भेषज द्वारा रोगकी शान्ति होती है, उसी प्राकृतिक नियमके अनुसार ही साधारण चिकित्सकोंसे असाध्य

जान परित्यक्त रोगी निरामय होता है, शान्ति लाभ करता है।

जिज्ञासु। किस तरह यह होता है, यह न समझ सकनेपर भी क्या मैं इसे कभी अविश्वास कर सकती हूं, कि मन्त्र वा मानसशक्ति द्वारा असाध्य रोगका भी उपशम होता है? एक वर्षसे लेकर नव वर्ष (की उम्र) तक मैं तो कालहीके मुखमें थी, मेरे बचनेकी तो कोई भी आशा न थी, केवल आपकी इच्छाशक्ति, आपकी कृपाने मृत्युमुखसे मेरी रक्षा की है। अगर आप कृपा कर मेरी प्राणरक्षा न करते, तो, क्या आज मैं आपके शान्तिमय चरणतल पर बैठी हुई इन अमृतमय उपदेशोंको सुनने पाती? केवल मैं ही क्यों, मेरे सरीखे और भी कितने व्यक्तियोंने आपकी कृपासे प्राण लाभ किये हैं। चाहे वे (यह बात) मानें या न मानें, पर मैं तो जितने दिन जीऊंगी, उतने दिन आपहीको प्राण-दाता जान मन ही मन आपकी पूजा करूंगी और दूसरेको (यदि आवश्यक हो), तो यह बात कहूंगी कि मन्त्र वा मानसशक्ति का वीर्य्य अमोघ है, इससे असाध्य भी साधित हो सकता।

वक्ता। क्या इसका कोई कारण नहीं कि, मैं तुमको, तुम बालिका होनेपर भी, इन बातोंको जो साधारणकी दुर्ब्बोध्य हैं, (जो साधारणके लिये प्रीतिकर नहीं है) सुना रहा हूं? मेरे मुखसे तुम जो कुछ सुन रही हो, वे सब शब्दस्पन्दन तुम्हारे चित्ताकाश पर संस्कार रूपसे विद्यमान रहेंगे; जिस प्राकृतिक नियमके अनुसार दो विजातीय वस्तुके (आपसमें) एककी दूसरे

पर क्रियासे विद्युत्शक्तिका अविर्भाव होता है, उसी प्राकृतिक नियमके अनुसार किसी दिन चित्ताकाश पर लग्न हुए इन शब्द-संस्कारोंसे तुममें विचार शक्तिका स्फुरण होगा, तुम वेद वा शिवकी कृपासे खुद ही मेरे इन उपदेशोंका तात्पर्य्य स्पष्टरूपसे समझ सकोगी। भगवान् पतञ्जलिदेवने कहा है—"प्रातिभ ज्ञानसे, विना दूसरे किसी कारणके मनुष्यमें सर्व्वज्ञता आती है, इस (प्रातिभ) ज्ञानका कोई भी विषय अज्ञेय नहीं रहता।" अगर उपदेष्टाकी वाणी केवल मृत जड़ स्पन्दन न हो, अगर यह उनके श्रद्धापूत, बहुशः अनुभूत विमल प्राण या वेदका स्पन्दन हो, और यदि उपदेश्यका हृदय भी स्वच्छ हो, उपदेशके प्रतिबिम्बको यथार्थरूपसे ग्रहण करनेके योग्य हो तो, जरूर ही अभीष्ट फलको प्रसव करती है, कभी व्यर्थ नहीं होती।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि, विचार वेदमूलक है, विचारसे ही सर्व्वप्रकार ज्ञानका विकाश हुआ करता है। वेद ही विश्वकी प्राणशक्ति हैं ("प्राण ऋच इत्येव विद्यात्"—ऐतरेय आरण्यक") निखिल शब्द विचार-पर हैं ; ज्ञान-विज्ञान पारदर्शी विश्वके परमबन्धु महर्षिगण प्राण वा वेदस्वरूप हैं ("सर्व्वं शब्दजातं महर्षिजातं च प्राणस्वरूपमित्येवोपासीत"—ऐतरेया अरण्यक भाष्य)। 'ऋषि' शब्द किस लिये वेदका वाचक हुआ है, सो यथाकाल तुम्हें समझा दूंगा। अब यह बात तुम्हारी समझमें आयेगी, कि क्यों विचारविहीनको 'मृत' कहा गया है ; अगर प्राणका स्पन्दन छन्दानुसार होता हो, तो विद्युतके

प्रकाशकी नाईं विचारशक्तिका स्फुरण होगा ही। इसमें कोई सन्देह नहीं कि, जो विचारविहीन हैं, तमोगुणके आधिक्य और सत्त्वगुणके ह्रासके कारण जिनकी विचारशक्तिका (आकाशमें स्पन्दन कम होनेसे जिस तरह आलोककी अभिव्यक्तिका ह्रास होता है, उसी तरह) स्फुरण नहीं होता, वह मृत वा जड़ सरीखे हैं। क्या तुम्हारी समझमें आ रहा है कि क्यों मैंने शिवका शिवत्व समझानेमें प्रवृत्त होकर 'विचार' नामक पदार्थकी बात उठाई है ?

जिज्ञासु। पूर्णतया समझ न सकने पर भी इन बातोंको सुन कर मुझे बड़ा ही आनन्द हो रहा है। मेरे ख्यालमें यह बात आ गयी है कि, अगर शिवका स्वरूप समझाना हो, अगर जिनमें सब कोई शयन करते हैं, जो सर्व्वप्रकार सुखके देनेवाले हैं, जो हर प्रकारके दुःखके नाश करनेवाले हैं, जो वेद-शास्त्ररूपसे ज्ञानदाता और मुक्तिसुखदायी हैं—अगर उनका स्वरूप पूर्णतया जानना हो, तो 'विचार' नामक पदार्थके बारेमें कुछ कहना अवश्य चाहिये ; चलते या बैठते समय, जागरण या निद्राकी अवस्थामें, अर्थात्, सर्व्वदा ही जो विचारपर नहीं हैं, वह 'मृत' हैं—मुझे अब मालूम हुआ हैं कि, यह बात बहुत ही सारवती है। विचार ही अन्तर तथा वाह्य जगत्का मूल है, विचारसे ही अन्तर तथा वाह्य जगत्का परिणाम होता है। अहा ! जिस दिन आपकी कृपासे इस अमूल्य उपदेशका तात्पर्य्य ग्रहण करनेकी योग्यताका मुझमें पूर्णतया विकाश प्राप्त होगा, उस दिन मैं कितनी सुखी होऊंगी, कितनी

लाभवती होऊंगी, सो सोचने पर भी मेरा हृदय अपूर्व्व आनन्दसे भर जाता है।

वक्ता। जब मैं तुमसे प्रश्न कियाथा—"जो सांसारिक सुखके देनेवाले हैं, जो दारिद्र्य, रोग आदि सांसारिक बाधायें दूर करते हैं, अपरिच्छिन्न सुखसे सुखी करते हैं, वह "शिव" हैं, इन बातों-को सुन कर तुम्हारे मनमें क्या हो रहा है?" तब तुमने मेरे प्रश्नके उत्तरमें कहा था—"शिव सांसारिक सुखके देनेवाले हैं; और वह अपरिच्छिन्न वा नित्य सुखके भी दाता हैं—क्या मैं इस बातका अर्थ समझ सकती हूं? दुःखकी अत्यन्त निवृत्ति अब तक कभी नहीं हुई है, कभी अपरिच्छिन्न वा नित्य सुखका दर्शन नहीं मिला है, अपरिच्छिन्न वा नित्य सुख कैसी चीज है, सो मैं जानती नहीं; 'शिवजी धनका अभाव दूर करते हैं, 'शिवजी व्याधिकी यातना निवारण करते हैं, 'शिवजी सारे दुःखोंका नाश करते हैं—ये बातें मेरे समीप अर्थशून्य सी ही मालूम पड़ रही हैं" तुम्हारे मुखसे मेरे प्रश्नका इस प्रकार योग्य उत्तर सुन कर मुझे बहुत आनन्द हुआ था। तुम्हारी सरीखी बालिकाके मुखसे अपने प्रश्नका इस प्रकार उत्तर पानेकी ही मुझे आशा थी। तुमने कहा था—'मैं यह जानती हूं कि, मनुष्य विद्या, व्यापार, कृषिकार्य्य, शिल्प आदि द्वारा धन उपार्ज्जन करता है, वैद्यकी दी हुई औषधि सेवन कर रोगमुक्त होता है, पर 'शिवजी सर्वप्रकार दुःखका नाश करते हैं', यह बात समझनेका भाग्योदय मेरा अभी नहीं हुआ है"। 'शिव ही सर्व्वप्रकार दुःखके नाशकर्त्ता हैं, और वे ही

'निखिल सुखके देनेवाले हैं'—करुणामय शिवजीकी कृपासे अब यह बात समझनेका तुम्हारा भाग्योदय होगा।

कृषिकार्य्यसे धन मिलता है, विद्यासे धन मिलता है, मनुष्य व्यापार कर धनवान् होता है, शिल्प द्वारा धनकी प्राप्ति होती है—धन लाभके इन उपायोंका तत्त्वानुसन्धान करनेसे तुम्हें मालूम होगा कि, करुणामय शिव ही इन उपायोंके मूल कारण हैं।

जिज्ञासु। धनोपार्ज्जनके इन उपायोंका किस तरह तत्वानुसन्धान करूंगी? किस तरह मुझे इस बातकी उपलब्धि होगी कि, शिव ही कृषिकार्य्यादि धन लाभके उपायोंका मूल कारण हैं?

वक्ता। विचार द्वारा यह बात समझनी होगी, विचारशक्तिही तुम्हें समझा देगी कि, कृषिकार्यादिके शिवजी ही मूल कारण हैं। पहले ही कह चुका हूं कि, यथारीति विचार न करनेसे किसी विषयका तत्त्वदर्शन नहीं होता।

जिज्ञासु। किस तरह विचार करना होता है, सो तो मैं नहीं जानती, मुझे विचार करना सिखा दीजिये।

वक्ता। कृषिकार्य्य द्वारा धान्यादि शस्य उत्पन्न होते हैं। कृषक भूमि कर्षण करता है तथा वीज वपन करता है। क्या कृषक बीज उत्पादन कर सकता है? क्या कृषक भूमिमें बीजोत्पादिका शक्ति दे सकता? (ऐसा हो सकता है कि) कृषकने बीज वपन किया है पर, वृष्टि नहीं हुई; तो क्या कृषककी वृष्टि करनेकी शक्ति है? (ऐसा भी देखा जाता है कि किसी वर्ष) फसिल बहुत अच्छी हुई है, कृषक, मानो, आनन्दसे नाच रहा है, 'अब थोड़े ही दिनमें

फसिल पक जायगी, बहुत धनकी प्राप्ति होगी, इस प्रकार आशाको हृदयमें धारण करता हुआ दिन बिता रहा है, ऐसे समय बड़ी भारी आँधी हुई, सारी फसिल नष्ट हो गयी, या नहीं तो पङ्गपाल* (टिड्डी—टिड़ी) ने फसल खा ली। आँधीको रोकनेकी शक्ति कृषककी नहीं हैं, पालपङ्ग (टिड़ी) से फसिलको बचानेकी शक्ति भी उसको नहीं है। अब सोच कर देखो कि जिनने भूमिको शस्य उत्पादन करनेकी शक्ति दी है, जो आँधी, पङ्गपाल आदिको रोक सकते हैं, तथा और और विपत्तियोंसे फसिलको बचा सकते हैं, क्या वे ही कृषिकार्य्यको सफल—पूरा करनेका, धान्य आदि शस्यको उत्पन्न करनेका मूल कारण नहीं हैं ?

सर्व्वेश्वर, सर्व्वकार्य्यके परमकारण, मङ्गलमय, शिवजीने भूमिको शस्य उत्पादन करनेकी शक्ति दी है, बीजकी अंकुरोत्पादिका शक्ति शिवजीने ही प्रदान की है, यथाकाल और यथाप्रयोजन वृष्टिका होना सर्व्वशक्तिमान्, कल्याणमय, सर्व्वकर्म्मसाक्षी शिवजीके इच्छाधीन है, जीवके शुभाशुभ कर्म्मके अनुसार फल देनेवाले शिवजी पर्ज्जन्य (मेघ—बादल) रूप धारण कर वृष्टि प्रदान करते हैं, जीवके कर्म्मानुसार युगपत् (एक ही साथ) न्यायवान् तथा करुणासागर शिवजी आँधी रूपसे शस्यादि नष्ट किया करते हैं। अतः शिव ही कृषिकार्य्यादिके मूल कारण हैं। तुम यही जानती हो, अथवा केवल तुम ही क्यों, मनुष्योंके बीच बहुतेरोंकी यही दृढ़ धारणा है कि, मनुष्य विद्या और शिलपसे धनार्ज्जन

---

* Locust.

करता है, पर जरा विचार करनेसे समझमें आवेगा कि, शिवजी ही निखिल विद्या और शिल्पके मूल प्रसूति हैं, शिवजो वेद वा शब्द रूपसे सारी विद्या तथा शिल्प-कलाके आदि उपदेष्टा हैं ("सा सर्व्वविद्या—शिल्पानां कलाना चोपबन्धनी। तद्वशादभिनिष्पत्तौ सर्व्वं वस्तु विभज्यते॥"—वाक्यपदीय)। अगर शिवजी वेद रूप आद्य मूर्त्ति धारण कर ज्ञान-विज्ञान प्रदान न करते, त्रिभुवन अन्ध और मूककी नाईं हो जाता, तो, कोई कभी ज्ञान-विज्ञान सीख नहीं सकता, शिल्प-कलाका आविष्कार तथा उन्नति साधन करनेमें समर्थ नहीं होता। * मार्कण्डेय दुर्गासप्तशतीमें उक्त हुआ है,—चतुःषष्ठिकलायुक्त सारी विद्या जगन्माता सर्व्वेश्वरी शिवा वा दुर्गाहीका अंश है, शिव वा दुर्गा ही बुद्धि (निश्चयात्मक ज्ञान) रूपसे सभीके हृदयमें निवास करती हैं (विद्याः समस्ताः तव देवि भेदाः * * * सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते।" दुर्गासप्तशती)। अतः जिन विद्या-शिल्पादिको तुम धन—प्राप्तिका उपाय कर जानतो हो, उन विद्या-शिल्पादिके शिवजी ही मूल कारण हैं। सच है कि, व्यापारसे धनलाभ होता है, पर, व्यापार जो सफल होता है, उसमें जो नुकसान नहीं होता, इसका कारण क्या है, सो तुमने ठोक ठीक विचार नहीं किया है। सर्व्वप्रकार कार्य्यसिद्धि, सद्बुद्धि, हिताहितिविवेकशक्ति, मनकी

---

* साक्षाद्भवान् यदि विधाय मूर्त्तिमाद्यां। तत्त्वं निजं तदवदिष्यदतोऽतिगुह्यं। नाज्ञास्यत त्रिभुवनं ध्रुवमन्धमूककल्पं॥ समस्तमसमञ्जसतामयास्यत्॥"—आगमरहस्यस्तोत्रम्।

एकाग्रता, प्रयत्नकी अशिथिलता, अध्यवसायकी दृढ़ता और शुभ प्रारब्ध—ये ही आपात दृष्टिमें कारण मालूम होते हैं; साधारण (मामूली) सिद्धितत्वचिन्तक लोग (सिद्धितत्व पर चिन्तन करनेवाले) इन्हींको (शुभ प्रारब्धको छोड़ कर) सिद्धिके कारणरूपसे निश्चय करते हैं (सिद्धिके कारण कर बताते हैं)। † अच्छी तौर पर विचार करनेसे मालूम होगा कि, शिव वा शिवाका (आगे चल कर समझावेंगे कि 'शिव' और 'शिवा' भिन्न नाम होने पर भी भिन्न पदार्थ नहीं हैं) अनुग्रह ही सर्व्वप्रकार कार्य्यों सिद्धिका मूल कारण है। शिव वा शिवा ही बुद्धि (निश्चयात्मक ज्ञान) रूपसे सभीके हृदयमें विद्यमान हैं, वेदमें, वेदाङ्ग निरुक्तमें 'श्रद्धा' को—'यह ऐसा ही है, इसके द्वारा यह कार्य्य अवश्य सिद्ध होगा,' इस प्रकारकी निश्चयात्मिका बुद्धिकी अधिष्ठात्री

---

† मनकी एकाग्रता, प्रयत्नकी अशिथिलता, अध्यवसायकी दृढ़ता, इससे मैं जरूरही सिद्धमनोरथ होऊंगा (अपने मतलबको हासिल करूंगा) इस प्रकारका ध्रुवविश्वास—ये ही साधारणमें सिद्धि (success) के कारण समझे जाते हैं। आजकलके वैज्ञानिक लोग अनुकूल प्रारब्धकी ओर दृष्टि नहीं डालते) ये ईश्वरके अनुग्रहको भी सिद्धिका कारण कर नहीं मानते। स्थूलदर्शिता, विचारशक्तिके समीचीन (यथार्थरूपसे) विकाशके अभाव ही इसका कारण है।

"This is the threefold key of attainment :—(1. Insistent disire (2) Confident expectation and (3) Persistent will"—The Psychology of Sucess by W. W. Atkinson.

देवताको ("श्रद्धा श्रद्धानात्"—निरुक्त। "एवमेतदिति वा बुद्धिरुत्पद्यते, तदधिदेवता, भावाख्या श्रद्धेत्युच्यते।"—निरुक्त-भाष्य।) सर्व्वप्रकार प्रवृत्तिके, सर्व्वप्रकार सिद्धिके निदानरूपसे निर्देश किया गया है। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि, व्यवसाय (व्यापार) सिद्धि भी शिवजीके अनुग्रहाधीन हैं। इसके सम्बन्धमें जितने संशय उठा करते हैं, यथार्थरूपसे विचार करनेसे उन सबका निरास होता है। तुम इसे समझ सकती हो कि,—जब तुम किसी भी कर्म्ममें प्रवृत्त होती हो, श्रद्धा ही—यह काम करनेसे मुझे यह फल मिलेगा, इस प्रकारका दृढ़ विश्वास ही—तुम्हें उस कर्म्ममें प्रवृत्त करती है। शिवजी श्रद्धारूपसे जीवको कर्म्म करनेमें प्रेरण करते है, शिवजी ही श्रद्धाके अधिदेवता हैं, श्रद्धाके अन्तर्यामी हैं। चित्त विशुद्ध न होनेसे मनुष्य यथार्थरूपसे कल्याणमय शिवजीका आदेश समझ नहीं सकता, शिवजी क्या करनेको कहते हैं, अशुभ प्रारब्धके कारण मनुष्य समझ नहीं सकता। अगर चित्त विमल हो, अगर अशुभ प्रारब्ध प्रतिबन्धक रूपसे सिद्धिके मार्ग पर खड़ा न हो, अगर मनुष्य मङ्गलमय शिवजीका आदेश ठीक तौरसे समझनेमें समर्थ हो, तो मनुष्यके सभी कार्य्य सिद्ध हो जायँ, उसको कभी विफलमनोरथ होना न पड़े। अतः कहा जा सकता है, कि शिवजी ही व्यवसायमें कृतकार्य्य होनेके मूल कारण हैं, विना उनकी कृपा कोई कर्म्मफल लाभ करनेमें समर्थ नहीं होता। सीता उपनिषद्में कहा गया है,—सीता ही (सीता और गौरी वा सीता और शिवा एक ही

पदार्थ हैं इसे ख्याल रखना) कल्पवृक्ष हैं, सीता ही कामधेनु हैं, सीता ही चिन्तामणि हैं, शङ्ख-पद्म-निध्यादि नव विधि सीता-देवीको ही आश्रय कर वर्त्तमान हैं, सीतादेवीकी भोगशक्ति, जोवके भोगके लिये :भोगरूप :कल्पवृक्षादिरूपमें आविर्भूत हुआ करती हैं ("भोगशक्तिर्भोगरूपा कल्पवृक्षकामधेनुचिन्तामणि शङ्ख-पद्मनिध्यादिनवविधिसमाश्रिता * * * —सीतोपनिषत्)। अब तुम्हें समझानेकी कोशिश करूंगा कि "शिवजी दरिद्रके अक्षय, नित्य कोषागार हैं।"

मनुष्य 'धन' की सृष्टि नहीं कर सकता ; वसुन्धरा जो वसुन्धरा हुई हैं, शिवजीकी कृपा ही इसका मूल कारण है। जीव कर्म्म करता है, ईश्वर :फलदान द्वारा उसे अनुगृहीत करते हैं। न्यायदर्शनप्रणेता महर्षि गोतमने इस सत्यको ज्ञापन करनेके लिये कहा है—ईश्वर ही कर्म्मफल प्राप्तिके कारण हैं, विना ईश्वरके अनुग्रह किसीकी कर्म्मफलप्राप्ति नहीं होती ("ईश्वरः कारणं पुरुषकर्म्माफल्यदर्शनात् ॥"—न्यायदर्शन, ४।२)।

जिज्ञासु। मैं यथाशक्ति ध्यान देकर आपके उपदेश सुन रही हूं, सब समझ न सकने पर भी, आपकी इन बातोंको सुन कर मुझे वड़ा ही आनन्द मिल रहा है, मेरा बहुत ही उपकार हो रहा है। आपके उपदेश सुनते-सुनते मेरे मनमें दो एक प्रश्न उठे हैं, अगर आदेश मिले तो पूछूं।

वक्ता। जो कुछ जाननेकी इच्छा हुई है, निडर होकर पूछो।

जिज्ञासु। क्या मनुष्यके कर्म्म न करने पर भी शिवजीः

उसको धनादि देते हैं? क्या कर्म्म न करने पर भी फलकी प्राप्ति होती है? अगर कर्म्म न करनेसे फलकी प्राप्ति न हो, तो फिर शिवको कर्म्मफलप्राप्तिका कारण क्यों बताऊं? तो फिर कर्म्म अपने स्वभाव हीसे फल दिया करता है, यही बात क्यों न कहूं? अगर कोई धनादिके लिये कर्म्म न कर एकान्तचित्त हो केवल शिवजी :हीकी पूजा करें, तो, क्या शिवजी उन्हें उनकी आवश्यकीय वस्तु, उनकी अभीष्ट सामग्री दिया करते हैं? अगर कोई कृषक शिवजीकी शरण ले, और उनके पास "हे देव! ऐसा करो कि यथाकाल यथाप्रयोजन वृष्टि हो, ऐसा करो, जिससे आँधी न हो, जिससे शिलावृष्टि न हो (पत्थर न गिरे) हे देव! देखना कि पङ्गपाल (टिड्डी) मेरी फसिल खा न डाले" इस तरह प्रार्थना करे, तो क्या शिवजी उसकी प्रार्थना श्रवण करते हैं, उसे पूरी करते हैं? क्या शिवजीकी शरण लेनेसे, उनकी पूजा करनेसे वे प्रतिकूल प्रारब्धको नष्ट करते हैं?

वक्ता। न्यायदर्शनप्रणेता महर्षि गोतमने तुम्हारे इन प्रश्नोंके बीच कई एकका समाधान किया है। उन्होंने कहा है—"देखनेमें आता है कि, मनुष्य कर्म्म करके भी सर्व्वदा सर्व्वत्र उसका फल नहीं पाता; जब देखा जाता है कि चेष्टा करके भी मनुष्य सर्व्वदा सर्व्वत्र अपनी चेष्टाका फल नहीं पाता, तो समझना होगा कि मनुष्यकी कर्म्मफलप्राप्ति पराधीन है, अगर ऐसा न होता, तो मनुष्य सर्व्वदा ही अपने कर्म्मका फल भोग कर सकता, उसकी क्रिया कभी निष्फल नहीं होती। कर्म्म करते

पर उसकी फलप्राप्ति होती है, और होती भी नहीं, ये दोनों ही देखनेमें आते हैं ; अतः मानना पड़ेगा कि कर्म्मफलप्राप्तिके विषयमें 'ईश्वर' ही कारण हैं। कर्म्म न करनेसे फलप्राप्ति नहीं होती, ईश्वर कर्म्म-सापेक्ष हैं, ईश्वर कर्म्मानुसार फल दिया करते हैं, जीव कर्म्म करता है, ईश्वर उसे फल देकर अनुगृहीत करते हैं।"* अगर इसके बाद तुम प्रश्न करोगी कि—"जिस तौर पर कर्म्म करनेसे उसकी फलप्राप्ति होती है, उस तौर पर उस कर्म्मको न करनेसे उसका फल नहीं मिलता, शक्तिके अभावके कारण, या आलस्यादि दोषोंके लिये, या अशुभ प्रारब्ध या पूर्व्व-कर्म्मकी प्रतिबन्धकताके कारण कर्म्मकी फलप्राप्ति नहीं होती, अगर कृतकर्म्मके फलको पानेके मार्गपर ये प्रतिबन्धक कारण न रहें, तो कर्म्मका फल अवश्य ही मिला करता है। अतः ईश्वरके अनुग्रहको कर्म्मफलप्राप्तिका कारण माननेकी क्या आवश्यकता है?" तो इसका उत्तर यही है कि :—आवश्यकता है। अगर पूर्णशक्तिमान्, जीवके सदा अनुग्रहकारी, अशुभ पूर्व्वकर्म्मके नाश करनेवाले कोई पुरुषविशेष न रहें, तो शक्तिका अभाव, शक्तिकी अपूर्णता किस तरह दूर हो सकती है ? तो फिर शक्तिहीनको कहासे शक्ति मिलेगी ? अशुभ प्रारब्धकी प्रतिबन्धकता किस तरह हटायी जायगी ? पूर्णशक्तिमान्, जीवके सदा अनुग्रहकारी अशुभ प्रारब्धकी प्रतिबन्धकताको हटा सकते हैं, ऐसे कोई पुरुषविशेष अगर न

---

* "न पुरुषकर्म्माभावे फलनिष्पत्तेः।"—न्यायदर्शन, ४।१।२०
"तत्कारित्वादहेतुः"—न्यायदर्शन, ४।१।२१

रहते, तो कभी किसीकी शक्तिका अभाव दूर नहीं होता, आलस्यादि दोषोंका नाश नहीं होता, अशुभ पूर्व्वकर्म्म द्वारा प्रतिहत (दबाया गया) व्यक्तिकी कभी कर्म्मफलप्राप्ति नहीं होती ?

अचेतन वा बुद्धिहीन (पुरुष) कभी बुद्धिपूर्व्वक कर्म्म कर नहीं सकता। वाष्पीय रथ (रेल गाड़ी) चलता तो सही, पर यह अपनेसे स्थिर (खड़ा) नहीं हो सकता, चेतन—बुद्धिविशिष्ट परिचालक द्वारा नियमित न होनेसे वाष्पीय रथ कभी यथाप्रयोजन स्थानोंपर स्थिर नहीं हो सकता। अतः कर्म्म वा बुद्धिहीन जड़-शक्ति :कर्म्मका फल दे नहीं सकती। जड़ वा बुद्धिहीन शक्ति अपनी योग्यतानुसार कर्म्म कर सकती है, पर वह नहीं जानती कि कब किस स्थान पर कर्म्मको स्थगित करना (रोकना) पड़ेगा, और कब किस स्थान पर कर्म्मका आरम्भ करना पड़ेगा ; अतः यह स्वतन्त्र नहीं, परतन्त्र है। कर्म्मकी प्रवृत्ति और निवृत्ति (कर्म्मको आरम्भ करना और उसको रोकना) इन दोनोंपर जिनकी प्रभुता है, वे ही स्वतन्त्र हैं, उन्हींको कर्त्ता कहा जाता है। कुठार वृक्षको छेदन कर सकता है, अग्नि अन्नका पाक कर सकता है, कुठारकी काटनेकी शक्ति है, अग्निकी पाक करनेकी योग्यता है, पर ये अपनेसे वृक्ष काटनेमें या अन्न पाक करनेमें प्रवृत्त नहीं हो सकते, यह शक्ति इनमें नहीं है। महर्षि गोतमने इसी लिये कहा है कि, स्वतन्त्र ईश्वर कर्म्मके फलदाता हैं, अस्वतन्त्र कर्म्म वा बुद्धिहीन जड़शक्ति, किसका कैसा कर्म्म है, कब किसको फल देना होगा, कब किसके कर्म्मका विपाककाल आ पहुंचा है, इन

बातोंका स्थिर नहीं कर सकती। 'पुरूषके कर्म्मको ईश्वर फल देकर अनुगृहीत करते हैं' यहां पर 'अनुग्रह' शब्दका क्या अर्थ है, सो समझानेके लिये न्यायवार्त्तिककारने वही कहा है, जो कि मैंने तुमसे कहा है ("अपि तु पुरुषकर्म्म ईश्वरोऽनुगृह्णाति। कोऽनुग्रहार्थः यद्यथा भूतं यस्य च यदा विपाककालः तद्यथा तदा विनियुङ्क्त इति।"—न्यायवार्त्तिक)।

जिज्ञासु। इन दुर्व्वोध्य विषयोंको समझनेकी शक्ति मेरी नहीं। शिवजी दरिद्रके अक्षय नित्य कोषागार हैं, शिवजी व्याधिकी यातना निवारण किया करते हैं, शिवजी सारे दुःखको मिटाया करते हैं, सर्व्व प्रकारके सुख दिया करते हैं,—जिस तरह मैं यह बात समझ सकूं, दादा! आप कृपा कर अपनी अल्पबुद्धि रमाको उसी तौर पर समझा दीजिये।

शिव कौन् हैं?

वक्ता। तुम जिस तरह समझ सको, मैं तुम्हें उसी तौर पर समझानेकी कोशिश कर रहा हूं। देखो रमा! अगर यह समझना हो कि, शिवजी दरिद्रके अक्षय तथा नित्य कोषागार हैं, शिवजी सब दुःखके हरनेवाले हैं, शिवजी सर्व्वसुखविधाता हैं, तो 'शिव' कौन् हैं, और दुःख किस तरह दूरीभूत होता हैं, किस तरह सुख मिला करता है, पहले इन बातोंको अच्छी तरह समझना होगा, और इसके साथ सुख और दुःखका स्वरूप क्या है, सो भी चिन्तन करना होगा। 'शिव' कौन् हैं, सो

समझाने जाकर मैंने तुमसे जो कुछ कहा है, उसका सार यही है, कि—जिनमें सब कोई शयन करते हैं, जो सबके आधार हैं, जिनसे सभी वस्तु उत्पन्न होती हैं, जिनकी गोद पर धृत होकर सारी वस्तुएं अवस्थान करती हैं, जिस तरह निद्राभिभूत सन्तान जननीके अंकपर शयन कर सो रहती है, उसी तरह, प्रलयकालमें, मृत्यु होनेसे, सभी वस्तु जिनकी गोदपर सो रहती हैं, जो सर्व्वत्र, सबके अन्दर-बाहर सदा विराज रहे हैं, अतः जो कल्याणमय हैं, वह 'शिव' हैं। 'शी' धातुसे 'वन्' प्रत्यय करके 'शिव' पद निष्पन्न हुआ है; इसका अर्थ है—जिनमें या जिनके द्वारा सभी कोई शयन करते हैं ("शेतेऽस्मिन् सर्व्वम्, शेतेऽनेन वा।"—शब्दार्थ चिन्तामणि)। उणादि-वृत्तिमें "जो शयन कर रहते हैं, जिस तरह निद्राकालमें सब कोई निश्चेष्ट होकर स्थिर हो रहते हैं, 'शव'वत्—मुर्देकी तरह हो रहते हैं, उसी तरह जो सर्व्वदा निर्व्विकार हैं, जो निर्गुण—गुणावस्थारहित हैं, जो सदा शान्त हैं, वह 'शिव' हैं।" 'शिव' शब्दका यह अर्थ कहा गया है ("शेते तिष्ठति नन्दरतिभ्यां न विक्रियते गुणावस्थारहितः शान्तः शिवः शम्भुः (उणादिवृत्ति)।" जो मङ्गलमय हैं, जो सुख-स्वरूप हैं, जो सबको सुखी करते हैं, जो सबके कल्याणविधाता हैं, वह शिव हैं"—अभिधानमें 'शिव' शब्दका यह भी अर्थ देखनेमें आता है ("शिवः सुखं तदस्यास्ति। अर्शाद्यच्। शिवयतीति वा तत् करोतीति ण्यन्तात् पचाद्यच्।"—शब्दार्थ चिन्तामणि)।

जिज्ञासु । यह बात सुनी है कि 'शव'से 'शिव' हुए है ; इस बातका क्या अर्थ है, दादा ।

वक्ता । 'शिव' शववत् निर्व्विकार हैं, अपनी शक्तिसे युक्त होनेसे, सगुण होनेसे यह जगत्के सृष्टि-स्थित्यादि कर्म्म निष्पादन करते हैं, शिवको—अखण्डसच्चिदानन्दमय परमात्माकी 'सगुण' 'निर्गुण' ये दो अवस्थायें हैं । शिवकी ये दोनों अवस्थायें ही नित्य हैं, शक्तिमान् शिव कदापि शक्तिको छोड़ कर नहीं रहते ।

जिज्ञासु । मैं तो कुछ समझती नहीं, दादा ।

वक्ता । यह तो ऐसी बात है नहीं, रमा, कि जिसे तुम सुनते ही समझ सको ।

जिज्ञासु । क्या मैं इसे समझ सकूंगी ?

वक्ता । जगद्गुरुकी, विश्वके अनुग्रहशक्तिकी कृपा होने होसे समझ सकोगी, ज्ञानमय करुणावरुणालय शिव ही तो सबका अन्धकार दूर कर ज्ञानालोक प्रदान करते हैं, (वह) शिव तो तुम्हारे अन्दर-बाहर सदा विराज रहे हैं, रमा । 'मेरे अन्दर-बाहर करुणासागर ज्ञानमय ज्ञानदाता शिव सदा विराज रहे है,' शिवजीकी कृपासे तुम्हारा जब ऐसा ज्ञान होगा, जब इस प्रकारका विश्वास सुदृढ़ होगा, जब शिवजीकी कृपासे तुम्हारी सर्व्वव्यापि-शिवका सर्व्व व्यापि रूप देखनेकी आंखें उन्मीलित होंगी (खुलेंगी) तब फिर तुम "क्या मैं इसे समझ सकूंगी" ऐसी बात न कहोगी ।

जिज्ञासु । आपकी इस प्रकारकी आश्वासवाणी वस्तुतः

मृतसञ्जीवनी है, यह मुर्दे को भी सञ्जीवित कर सकती है। मैं तो शवसे (मुर्दे से) कोई अलग चीज़ नहीं हूं।

वक्ता। रमा! अगर तुम ठीक हो 'शव' (मुर्दा) हो सकी, तो शिवजीकी कृपासे तुम 'शिव' हो जाओगी, पर तुम (अभीतक) ठीक 'शव' हो न सकी हो।

'मेरा कुछ भी नहीं है' 'हे मेरे सर्व्व! तुम्हारे विना मैं 'शव' हूं, मैं असत् हूं, जब तुम इस तरह अपनेको शव (मुर्दा) बना सकोगी, जब तुम सर्व्वमयके चरणोंमें अपने 'मैं' और 'मेरा' भावको सर्व्वतोभावसे डुवा दे सकोगी, जिस रोज़ तुम यथार्थ निरभिमान हो सकोगी, जिस दिन तुम्हारा मन पूर्णरूपसे राग-द्वेष-रहित हो जायगा, उसी दिन तुम यथार्थ शवत्वको प्राप्त करोगी, उसी दिन " 'शिव' और 'शिवा' एक—अभिन्न हैं," तुम्हारा यह ज्ञान-सूर्य्य अविद्यामेघमुक्त हो उदित होगा। यथार्थरूपसे 'शव' हो सकने हीसे शिवजीकी कृपा होती है, शिवजीकी सन्तान, (जो) जीव (है, सो), पापमुक्त होकर 'शिव' होता है, (तब वह) अविराम (सदाके लिये) कल्याणमय, ज्ञानमय, प्रेममय, शान्ति-मय, अपरिच्छिन्न आनन्दमय शिवकी सर्व्वाश्रय गोद पर शयन कर परमानन्दसे निवास करता है, तब फिर उसका आधि-व्याधिसे कोई भय नहीं रहता, तब फिर वह मृत्यु-भयसे भीत नहीं होता, फिर उसको शोकानलमें दग्ध नहीं होना पड़ता, तब फिर दुर्भिक्षकी घोर-मूर्त्ति, महामारीका हृदय-प्रकम्पक भीषण रूप, दारिद्र्यकी असह्य छवि. उसको सता नहीं सकती। रमा! यथार्थ 'शव'

होनेकी चेष्टा और योगसाधनकी, सर्व्वप्रकार उपासना करनेको चेष्टा एक ही चीज़ है। जब तुम अपनी चित्तवृत्तियोंको एक-बारगी निरुद्ध कर सकोगी, तब तुम जागतिक दृष्टिमें 'शव' होगी, पारमार्थिक दृष्टिमें शिव होगी, आत्माके स्वरूपमें अवस्थान करोगो।

जिज्ञासु। 'शिव' और 'शिवा' अभिन्न हैं—यह मुझे समझा दीजिये।

वक्ता। 'शिवरात्रि और शिवपूजा' समझानेमें प्रवृत्त हुआ हूं अतः 'शिव' और 'शिवा' अभिन्न हैं, यह तो समझाना ही होगा। रमा ! जो 'शिव' हैं वही 'शिवा' हैं, वही 'रात्रि' हैं, वही 'भुवनेश्वरी' हैं। जब मैं तुम्हें 'रात्रि' किसे कहते हैं सो समझाऊंगा, तब तुम 'शिवरात्रि' कौनसा पदार्थ है, शास्त्रमें शिवरात्रिकी क्यों इतनी प्रशंसा की गयी है, उसे जानकर कृतकृत्य होगी, 'शिव' कौन हैं, 'रात्रि' कौनसा पदार्थ है पूर्ण रूपसे इसे समझ एक शिवरात्रिमें शिवकी—शिवयुक्त शिवाकी—पूजा करनेसे तुम्हारा जन्म सफल होगा, तुम कृतार्थ होगी। मैंने संक्षेपमें तुमसे जो कुछ कहा, उससे आशा है कि, "शवसे" शिव हुए हैं, इस बातका अभिप्राय क्या है सो तुम कुछ कुछ समझ सकोगी।

जिज्ञासु। मुझे अब आशा हो रही है कि, आपकी कृपासे अब अच्छी तरहसे शिव कौन हैं, सो समझ सकूंगी। मालूम हो रहा है कि, अब 'शिवजी ही कल्याणमय हैं, शिवजी ही सब दुःखके

हरण करनेवाले हैं, शिवजी ही सब रोगोंके नित्य भिषक् हैं, शिवजी ही भवरोगवैद्य हैं, शिवजी ही दरिद्रके अक्षय तथा नित्य कोषागार हैं'—इन अमूल्य, इन अमृतमय उपदेशोंका हृदय देख सकूंगी। अब मुझे इस प्रकारकी आशा हो रही है कि, किसी दिन यह यथार्थ रूपसे विश्वास कर सकूंगी कि—"हे देव! देखना कि, यथाकाल यथाप्रयोजन वृष्टि हो, देखना कि आँधीसे या शिलावृष्टिसे मेरी फसिल नष्ट न हो जाये, ठिड्डी मेरी फसिलको खा न जाय' अगर कृषक सुदृढ़, सरल विश्वासके साथ इस प्रकारकी प्रार्थना करे, तो, देव उसे सुनते हैं, शरणागत कृषककी प्रार्थना पूरी करते हैं।" "अगर कोई भाग्यवान् निरन्तर शिवजीकी पूजा करें, शिवजीकी पूजा छोड़ दूसरा काम करनेका जिसको अवसर नहीं मिलता, जिसके हृदयमें असरलताकी कालिख नहीं है; सर्व्वशक्तिमान, शरणागतपालक, भक्तपालनतत्पर "शिवजी" ऐसे भक्तकी सभी इच्छा पूर्ण करते हैं, जो उसका है नहीं उसे उसको प्रदान करते हैं, और स्वयं ही उसकी (उनकी दी हुई चीज़ोंकी) रक्षा भी करते हैं। अब आशा होती है कि,—मैं किसी रोज़ यथार्थ रूपसे विश्वास कर सकूंगी कि ये बातें मन बहलानेकी बातें नहीं हैं।

शिवजीकी कृपासे ही जीव कृतकृत्य होता है, सब छोड़कर
सर्व्वान्तःकरणसे उनकी शरण ले सकनेसे ही जीवका
सारा दुःख दूर होता है; सब काम छोड़ 'शिव' की
(ईश्वरकी) शरण लेना ही यथार्थ पुरुषकार

है, यह कापुरुषता नहीं. स्थूल दृष्टिमें न्यायविरुद्धहोनेपर भी सूक्ष्म दृष्टिमें यह पूरा न्यायसङ्गत है ।

वक्ता । रमा ! दूसरा कर्म्म न कर, अनन्यासक्त हो, अविराम सर्व्वान्तःकरणसे शिवजीकी पूजा करनेसे, उनकी शरण लेनेसे, उनके चरणोंमें अखिल आत्मभार अर्पण करनेसे, "जीव" "शिव" होता है, सर्व्वशक्तिमान् होता है, सर्व्वज्ञ होता है, शिवजीके अनुग्रहसे उसे सब मिलता है, वह सर्व्वथा पूर्ण होता है । जो शिवजीकी उपासना छोड़ और कोई कर्म्म कर नहीं सकता, उनके लिये और सब काम छोड़ निरन्तर शिवजीका ध्यान करना, उनकी उपासना करना कापुरुषता नहीं है, यही वस्तुतः श्रेष्ठ पुरुषकार है । भगवान् वेदव्यासने योगसूत्रके भाष्यमें कहा है— ईश्वर आराधनादि साधन द्वारा आराधित (पूजित) होनेसे 'इसके इस अभीष्टकी सिद्धि हो' इस प्रकारका अनुग्रह करते हैं, ईश्वरके इस प्रकारके अनुग्रहसे समाधिसिद्धि होती है, जीवकी सर्व्व प्रकारकी सिद्धि होती है ; ईश्वर अपने इच्छानुसार शरीर धारण कर सकते हैं, वेद-शास्त्र द्वारा जीवको ज्ञानदान कर मुक्त कर सकते हैं, भक्तको दर्शन दे सकते हैं, और करुणामय (भगवान्) ऐसा किया भी करते हैं ।* श्रीभगवान्के नित्य शरीर हैं, परमेश्वर

---

* "ईश्वरप्रणिधानाद्वा ।"—योगसूत्र । "ईश्वरो वक्ष्यमाणलक्षणः । तस्मिन् परमगुरौ प्रणिधानं भावनाविशेषः । तस्मादासन्नतमः समाधिलाभः । ईश्वरो हि समाराधनादिना साधनेने आराधितः 'इदमस्येष्टमस्तु' इति संसाराङ्गारे तप्यमानं पुरुषमनुगृह्णातीति भावः । * * * इत्थं तप्यमानं पुरुषं परमेश्वरः स्वेच्छया निर्म्माणकायमधिष्ठाय लौकिक वैदिक सम्प्रदाय प्रद्योतकोऽनुगृह्णाती त्यनवद्यम् ।"—योगसूत्रवृत्ति ।

नित्य निराकार और नित्य साकार हैं, श्रीराम, श्रीकृष्ण आदिके शरीर ऐसे देखनेमें परिच्छिन्नसे प्रतीत होनेपर भी वे वस्तुतः नित्य हैं, वस्तुतः विभु—जगद्व्यापी हैं। भगवान्का शरीर अगर नित्य न होता, विभु---जगद्व्यापी न होता, तो, भगवान्के यथार्थ भक्तगण सर्व्वत्र और सर्व्वदा अपनी अपनी भावनाके अनुरूप भगवान्के शरीरको प्रत्यक्ष नहीं कर सकते। श्रीभगवान्का शरीर सब स्थानोंमें सर्व्वदा वर्त्तमान है, पर सर्व्वदा उसका आविर्भाव नहीं होता) केवल भक्तोंके भावनानुरूप ही आविर्भूत हुआ करता है।

जिज्ञासु। यदि यह बात सत्य हो कि, भगवान्का शरीर सर्व्वत्र वर्त्तमान है, तो फिर वैकुण्ठादि स्थानविशेषको भगवान्का आवासस्थान क्यों कहा जाता ?

वक्ता। इसमें सन्देह नहीं कि, वैकुण्ठादि (स्थान) भगवान्के वासस्थान रूपसे प्रसिद्ध हैं, यह मिथ्या नहीं कि वैकुण्ठादि स्थान (वास्तवमें) हैं, फिर यह बात भी सत्य है कि भगवान्का शरीर सर्व्वव्यापी है। सत्त्वगुणके आधिक्यसे वैकुण्ठादि स्थानोंका आविर्भाव हुआ करता हैं। जो हृदय या जो देश गुणमें अनेकतः वैकुण्ठादिके सदृश हैं, भगवान् उसी हृदयमें या उसी देशमें निवास किया करते हैं, प्रगट हुआ करते हैं। भक्तश्रेष्ठ प्रह्लादके भावनानुसार भगवान् नरसिंह रूपमें स्तम्भसे आविर्भूत हुए थे।

जिज्ञासु। भगवान् किस तरह भक्तोंके लिये अनेक रूप धारण करते हैं।

वक्ता। तुम्हारे इस प्रश्नका अभिप्राय क्या है ?

जिज्ञासु। बहुतेरे कहते हैं, 'शिव निर्गुण हैं,' 'शिव पूर्ण हैं,' 'शिव नित्यमुक्त हैं, शिवके राग-द्वेष नहीं, किसी प्रकारका क्लेश नहीं, धर्म्माधर्म्म नहीं'; तो फिर किस तरह शिवजी भक्तोंके लिये नानारूप धारण करते हैं ? तो फिर क्यों भक्तके दुःखसे उनका हृदय व्यथित होता ?, भक्तका दुःख देखकर क्यों उनमें दया आती ? मेरे उक्त प्रश्नका यही अभिप्राय है।

वक्ता। तुम्हारा यह प्रश्न बड़ा ही सुन्दर और प्रयोजनीय है, इसका समाधान अवश्य होना चाहिए। कपिलदेवने लोकहितार्थ इस प्रकारका प्रश्न उठाया था; महर्षि गोतमने इस प्रकारका प्रश्न उठाकर उसका समाधान किया है; नास्तिकगण भी अपनी अपनी प्रतिभानुसार इस तरहके बहुत तर्क किया करते हैं। वेद और वेदमूलक शास्त्रोंका उपदेश है कि इन्द्र—परमैश्वर्यवान् परमेश्वर माया द्वारा अनेक रूप धारण करते हैं।*

जिज्ञासु। 'माया' कौनसा पदार्थ है ? क्या 'माया' ईश्वरसे कोई पृथक् वस्तु हैं ?

वक्ता। तैत्तिरीय आरण्यकने मायाको त्रिगुणमयी प्रकृति बताया है, माया परमेश्वरकी शक्ति छोड़ और कुछ नहीं हैं। श्वेताश्वतर उपनिषद्में उक्त हुआ है—मायाको प्रकृति और मायीको—माया जिनकी शक्ति हैं उनको "महेश्वर" कर जानना ("मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।"—श्वेताश्वतर उपनिषत्)।

* "इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते।"—ऋग्वेदसंहिता।

'माया' वा 'प्रकृति' महेश्वरसे पृथक् वस्तु नहीं हैं।

जिज्ञासु। 'माया' वा 'प्रकृति' ईश्वरसे अभिन्न हैं—इस बातका अभिप्राय क्या है?

वक्ता। जिस तरह अग्निसे ताप भिन्न नहीं है, जिस तरह चन्द्रमासे ज्योत्स्ना अभिन्न है उसी तरह 'शिव' से 'शिवा' वा पुरुषसे प्रकृति, या शक्तिमान्से शक्ति वस्तुतः अभिन्न हैं।

जिज्ञासु। 'प्रकृति' और 'ईश्वर' इन दोनोंका क्या कार्य्य है?

वक्ता। 'ईश्वर' और 'प्रकृति' इन दोनोंसे विश्वजगत्की सृष्टि, स्थिति, लय आदि सब कार्य्य निष्पादित हुआ करते हैं। 'ईश्वर' और 'प्रकृति' ये दोनों ही जगत्रूप कार्य्यके कारण हैं।

जिज्ञासु। 'ईश्वर' और 'प्रकृति' इन दोनोंको ही जगत्-कार्य्यके कारण बतानेका प्रयोजन क्या है?

वक्ता। जो कार्य्यरूपमें परिणत होता है, उसे 'उपादान' वा 'समवायी' कारण कहते हैं। मृत्तिकासे घट बनता है, बिना मृत्तिकाके घट नहीं होता; स्वर्ण न रहनेसे स्वर्णबलय नहीं होता, वीज न रहनेसे अंकुर नहीं होता। मृत्तिका घटाकार धारण करती है, स्वर्ण बलयादिके आकारमें आकारित होता है। जिससे जो होता है, जो कार्य्यरूपसे उत्पन्न होता है, उसे उपादान कारण कहते हैं। मृत्तिका घटका, स्वर्ण बलयका, वीज अंकुरका उपादान कारण है। कार्य्य उसके उपादान कारणसे भिन्न नहीं है, मृत्तिकाको निकाल देनेसे घटका 'घट' यह नाममात्र रहता है, स्वर्ण बलयसे स्वर्णको पृथक् कर देनेसे बलयका 'बलय' इस

नामको छोड़ और कुछ नहीं रहता। ईश्वर जगत्के उपादान हो नहीं सकते।

जिज्ञासु। ईश्वर जगत्का उपादान कारण क्यों नहीं हो सकते ?

वक्ता। उपादान कारणकी विकृति होती है, उपादान कारण अनेक आकार धारण किया करता है; जिस तरह मृत्तिका घटका उपादान कारण है, उस तरह ईश्वरको जगत्कार्य्यका उपादान कारण माननेसे उनको फिर निर्व्विकार कहा नहीं जा सकता।

जिज्ञासु। जगत्कार्य्यका उपादान कारण कौन हैं ?

वक्ता। 'प्रकृति' वा 'माया' जगत् कार्य्यका (स्वर्ण जिस तरह स्वर्णवलयका उपादान कारण हैं उसी तरह) उपादान कारण हैं।

जिज्ञासु। तो फिर ईश्वर क्या करते हैं? जगत् कार्य्यके सम्पादनमें ईश्वरकी कौनसी कार्य्यकारिता है ?

वक्ता। प्रकृतिको अन्तरालमें (मध्यमे) रखकर ईश्वर जगत्को उत्पादन करते हैं, जगत्रूप कार्य्य प्रकृतिसे उत्पन्न होता है। जिस तरह बीज शक्तिसे अंकुरमें परिणत होता है, सुवर्णसे जिस तरह वलय होता है, उसी तरह प्रकृतिसे विविध विचित्रतामय जगत्की उत्पत्ति होती है।

जिज्ञासु। तो फिर ईश्वरका अस्तित्व माननेमें लाभ ही कौनसा है।

वक्ता। चैतन्यमय ईश्वर अपने प्रकाशस्वरूपमें प्रकृतिका

अनुवर्त्तन किया करते हैं। केवल जड़स्वभावा प्रकृति ही अगर जगत्का कारण होती, तो जगत् जड़रूप होता, तो, जीवोंकी जो 'मैं' 'मेरा' इत्यादि रूप बुद्धिकी स्फूर्त्ति देखी जाती है, वह नहीं होती। प्रकृति स्वभावतः अचेतन, जड़स्वरूपिणी है, सत्त्व, रजः और त्रिगुणविशिष्ठा हैं, और ईश्वरकी शरीरभूता—शरीरस्वरूपा हैं। इस प्रकृतिमें जब 'मैं' 'मेरा' ईत्यादि प्रकार बुद्धिका विकाश होता है, तभी वह इस जगत्को प्रसव करनेमें समर्थ होती है, स्वयं जगत्रूपमें परिणत होती है। 'ईश्वर विशुद्धचैतन्यमय है, ईश्वर आनन्दस्वरूप हैं' ईश्वरकी इच्छामात्रसे ही जगत् उत्पन्न होता है, इसलिये उनको जगत्का कर्त्ता कहा जाता है। ईश्वर प्रकृतिरूप शरीर द्वारा जगत्के उपादान कारण हैं, और चैतन्य द्वारा इसके उत्पादनकर्त्ता हैं। प्रश्न होगा कि—अगर प्रकृति ही जगत्का उपादान कारण है, तब तो, जगत् प्रकृतिस्वरूप ही हुआ, अतः ब्रह्मसे बिलकुल भिन्न हो पड़ा। इसका उत्तर यही है कि—नहीं, सो नहीं होता, 'प्रकृति' ब्रह्मसे अभिन्न हैं; जगत्का उपादान कारण प्रकृति होनेपर भी, जगत् ब्रह्मसे अभिन्न हैं, क्योंकि, 'प्रकृति' 'ईश्वर' से अभिन्न हैं; फिर, जगत् प्रकृतिसे अभिन्न हैं, इसलिये जगत् ईश्वरसे अभिन्न है। * जगत्के सर्व्वत्र 'ईश्वर' विराजमान रहते हैं। अतः प्रकृति और पुरुष इन दोनोंका ही अस्तित्व मानना पड़ेगा। क्योंकि, ये (आपसमें) एक दूसरेकी अपेक्षा

---

* प्रकृत्यन्तरालादु वै कार्य्यं चित्सत्त्वेनानुवर्त्तमानात् ॥"—
शाण्डिल्य सूत्र।

रक्खा करते हैं ; प्रकृति चैतन्यके लिये पुरुषकी और पुरुष जगत्के उपादान कारणके लिये प्रकृतिकी अपेक्षा किया करते हैं। तैत्तिरीय आरण्यक श्रुतिने कहा है—प्रकृति और पुरुष ये दोनों ही अनादि हैं, दोनों ही 'अज' हैं—दोनों हीका कभी जन्म नहीं हुआ। अजा—अनादि मूल प्रकृतिरूपा 'माया'—त्रिगुणात्मिका हैं इसलिये अकेली ही देव, तिर्य्यक्, मनुष्यादि विविध प्रजाको प्रसव किया करती हैं। * कार्य्यके वैचित्र्यके विषयमें विविध कारणका अस्तित्व मानना ही पड़ेगा, सिवा कारणकी विचित्रताके कार्य्यकी विचित्रता हो नहीं सकती। जो कारणमें नहीं है, वह कार्य्यमें रह नहीं सकता ; जगत्की तरफ ताकनेसे मालूम होता है कि, जगत्का हरएक कार्य्य ही वैचित्र्यमय है। अतः मानना पड़ेगा कि, विचित्र जगत्-कार्य्यका कारण प्रकृति वा माया भी वैचित्र्यशालिनी हैं। श्रुतिने इसीलिये कहा है कि,—अजा (अर्थात्)—प्रकृति त्रिगुणात्मिका है और वह अनादि-कर्म्म-संस्कारवती है ; इसलिये एक ही अजा वा प्रकृतिसे अनेक प्रकारकी प्रजा वा विविध, विचित्र कार्य्यकी उत्पत्ति असम्भव

"अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीं प्रजां जनयन्तीं सरूपाम्। प्रजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥"

—तैत्तिरीय आरण्यक।

"गुणत्रयात्मिका मायेत्युक्तं भवति। सा च देवतिर्य्यङ्मनुष्यादिरूपां गुणत्रयात्मकत्वेन सरूपां बहुविधां प्रजां जनयन्ती। तत्तिरीयारण्यक भाष्य।

नहीं। 'प्रकृति' और पुरुष स्वरूप-सम्बन्धमें परस्पर (आपसमें) संयुक्त हैं, सदा ही सम्बद्ध हैं।

जिज्ञासु। 'प्रकृति' और 'पुरुष' स्वरूप सम्बन्धमें आपसमें सम्बन्ध हैं—इस बातका अर्थ क्या है?

वक्ता। प्रकृति और पुरुषका सम्बन्ध आगन्तुक नहीं है। यष्टि (लाठी) धारी पुरुषके साथ यष्टिका जो सम्बन्ध है, प्रकृतिके साथ पुरुषका वह सम्बन्ध नहीं, यह सम्बन्ध अनादि है।

जिज्ञासु। क्या 'शिवा' 'गौरी' वा 'उमा' ये जड़शक्ति हैं?

वक्ता। 'शिवा' परमा देवी हैं, 'शिवा' सदाकारा हैं, 'शिवा' संसारकी सृष्टि-स्थिति-लयकारिणी हैं, 'शिवा' चैतन्यमयी हैं, 'शिवा' शिवंकरी—सर्व्वप्राणिकी सुखकारिणी हैं, 'शिवा' 'शिव' से अभिन्न हैं ("सदाकारा परानन्दा संसारच्छेदकारिणी। सा शिवा परमा देवी शिवाभिन्ना शिवंकरी॥"—सूत संहिता)। 'शिवा' से छूटा हुआ 'शिव' निरर्थक हैं। बिना 'शिव' के शक्ति और बिना शक्तिके शिव—ये कभी हो नहीं सकते, जो गौरी-शंकरके ऐक्यको साक्षात् कर सकते हैं, वही यथार्थ ज्ञानी हैं ("न शिवेन विना शक्ति र्न शक्तिर्रहितः शिवः। उमा शंकरयारैक्यं यः पश्यति स पश्यति॥"—सूतसंहिता)। देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, ओषधि, वनस्पति, अणु, परमाणु, नद, नदी, पर्वत, समुद्र, विद्युत्, भक्ष्य, भोज्य, और एक बातमें कहा जाय, तो, विश्वजगत् शिव-शक्तिमय है।

रुद्रहृदय उपनिषत्में कहा गया है—रुद्र सर्व्व देवमय हैं,

देवलोग सभी शिवात्मक हैं, रुद्र ब्रह्म-विष्णुमय हैं ; सब पुंलिङ्ग ईशान हैं, सब स्त्रीलिङ्ग भगवती उमा हैं, स्थावर-जङ्गमात्मक सारी प्रजा उमा रुद्रात्मिका हैं ; उमाशंकरका यो योग है वह योग 'विष्णु नामसे कहे जाते हैं। गोपथ ब्राह्मण और सावित्री उपनिषत्ने सविता कौन् हैं और सावित्रीका स्वरूप क्या है, सो समझानेके समय जो कुछ कहा है, उसका सार यही है कि—'विश्व जगत् उमाशंकरका रूप हैं,' 'विश्व-जगत् हरगौर्य्यात्मक है ? योगवाशिष्ठ रामायणमें कहा गया है—'भैरव, जिन्हें मैंने चिदाकाश शिव बताया, उनकी जो मनोमयी स्पन्दशक्ति है उन्हींको तुम "माया" वा 'काली' कर जानो। यह माया शिवसे अभिन्न हैं ; जिस तरह पवन और पवनस्पन्द एक ही चीज है ; जिस तरह उष्णता (ताप) और अनल एक ही पदार्थ है, उसी तरह चिन्मय शिव और उनकी स्पन्द-शक्ति (माया) भी सदा एक ही चीज हैं, कदापि पृथक् नहीं हैं। जिस तरह 'स्पन्द' से वायुका अनुमान होता है, जिस तरह उष्णतासे अग्निका अनुमान होता है, उसी तरह यह 'शिव नामक निर्म्मल शान्त चिदात्मा भी यथोक्त माया द्वारा लक्षित होते हैं, और किसी उपायसे वे लक्षित नहीं होते। इस शान्त चिन्मय शिव हीको तत्त्वज्ञानी लोग वाङ्मनके अगोचर 'ब्रह्म' कर जानते हैं। "स्पन्दशक्ति" शिवजीकी 'इच्छा' हैं। यह इच्छारूपिणी स्पन्द शक्ति ही जीवके जीवन-रूपमें परिणत होनेसे जीवात्मा वा जीव-चैतन्य नामसे, (और) सृष्टिकी प्रकृति (मूल कारण) हैं इस लिये प्रकृति

नामसे कही जाती हैं। ये प्रणवकी सारांश शक्ति हैं, इसलिये इनका नाम 'उमा' पड़ा है; जो लोग इनका गान करते हैं, इनका जप करते हैं, वे लोग परमार्थको प्राप्त होते हैं, वे लोग सर्वथा प्राणको लाभ करते हैं, इस लिये इनको 'गायत्री' कहते हैं; सर्व्व-जगत्‌को प्रसव करती हैं, इसलिये इनको सावित्री कहते हैं; सारी ज्ञानदृष्टि-धारा इन्हींसे प्रवाहित होती है, इस लिये इनका नाम सरस्वती पड़ा है। ये गौराङ्गिनी हैं, इसलिये 'गौरी' कही जाती हैं, जब ये शिव-शरीरमें अनुषङ्गिणी होती हैं, तब ये 'गौरी' होती हैं। * शिव और शिवाके स्वरूपके सम्बन्धमें तुम्हें जो कुछ सुनाया, सो वेद और वेदमूलक निखिल शास्त्र सम्मत है। आधु-निक यथार्थ धीमान् वैज्ञानिकोंके बीच किसी किसीने विश्व-जगत्‌-को शिव-शक्तिमय कर ही समझा है। विज्ञानकुशल चिन्ताशील टेट और ष्टुयार्ट ने कहा है—"व्यक्त जगत्‌का परिणाम चैतन्याधिष्ठित अव्यक्त द्वारा हुआ करता हैं"। "ईश्वरेच्छा ही निखिल कार्य्यका मूल कारण है, सृष्टि ईश्वरकृति है, यही कहना मनुष्योचित है"—यह प्रवीण वैज्ञानिक ग्रोभ्‌की उक्ति है। 'शिव' और 'शिवा' के सम्बन्धमें यथाप्रयोजन संक्षेपमें कुछ कहा; अब संक्षेपमें तुम्हें इन बातोंको समझाऊंगा कि—शिव वा शिवयुक्त शिवंकरी शिवा ह सर्व्वदुःखहर्त्ता और सर्व्वसुखविधाता हैं। शिवजीकी कृपा हीसे जीव सब कुछ पाया करता है, सब कामको छोड़ यथार्थ

---

* स भैरवश्चिदाकाशः शिव इत्यभिधीयते। अनन्यां तस्य तां विद्धि स्पन्दशक्तिं मनोमयीं॥—निर्व्वाण प्रकरण, उत्तरार्द्ध।

रूपसे अविराम शिवजीकी पूजा करनेसे जीव कृतकृत्य होता है, यथार्थ रूपसे शिवजीकी उपासना करना ही, सर्व्वान्तःकरणसे शिवजीकी शरण लेना ही श्रेष्ठ पुरुषकार है, यह कापुरुषता नहीं है ; शिवजी जगत्के सृष्टि-स्थिति-लयकार्य्य सम्पादन करते हैं इसलिये, जीवोंके दुःख देख कर उनपर करुणायुक्त होते हैं इसलिये, उनके शिवत्वमें कोई हानि नहीं पहुँचती, इससे यह नहीं प्रमाणित होता कि वह साधारण लोगोंकी नाई राग-द्वेषादियुक्त हैं ।

महेश्वरने हिरण्यगर्भको कहा है—'जो व्यक्ति निरन्तर मेरा अनुस्मरण किया करता है, जिनका चित्त मेरे ध्यानमें सदा निमग्न है, वह केवल इससे ही सर्व्वज्ञ होता है, केवल इससे ही वह परेशत्व—सबके ऊपर ऐश्वर्य्यको लाभ करता है, केवल इससे ही उसकी सर्व्वसम्पूर्ण शक्तिताकी प्राप्ति होती है, वह अनन्तशक्तिमान होता है ।" ("सर्व्वज्ञत्वं परेशत्वं सर्व्वसम्पूर्णशक्तिता । अनन्त शक्तिमत्त्वं च मदनुस्मरणाद् भवेत् ॥"—योगशिखोपनिषत्)।

जिज्ञासु । मै नहीं जानती कि, निरन्तर शिवजीका अनुस्मरण किस तरह किया जाता है, किस तरह केवल निरन्तर शिवजीके अनुस्मरण हीसे कोई सर्व्वज्ञ होता है । मैं पूछना चाहती हूं कि, मनुष्योंके बीच जो बहुज्ञ हुए हैं, क्या वे विद्यार्ज्जनके लिये शिवका अनुस्मरण कर बहुज्ञ (और) विविध-विद्याकुशल हुए हैं ? जिन कारणोंसे कोई बहुज्ञ हो सकता है, क्या निरन्तर शिवजीका अनुस्मरण उनमेंसे एक है ? निरन्तर शिवजीका ध्यान करनेसे मनुष्यको सर्व्वसम्पूर्णशक्तिताकी प्राप्ति होती है, केवल इससे ही

मनुष्यमें अनन्तशक्तिमत्ताका आविर्भाव होता है—इसे समझनेकी योग्यता मुझमें इस वक्त नहीं है, पर मैं बहुत ही चाहती हूं कि यह दृढ़ रूपसे विश्वास करूं कि शिवजीकी कृपासे सब कुछ हो सकता है। अच्छा, पूछती हूं, क्या शिवजीका निरन्तर अनुस्मरण कर कोई सर्व्वज्ञ हुआ है? किसीने सर्व्व-सम्पूर्णशक्तिमताको प्राप्त किया है? किसी भाग्यवान्‌में अनन्तशक्तिमत्ताका विकाश हुआ है? निरन्तर शिवजीका अनुस्मरण करनेसे इतने लाभ किस तरह होते हैं दादा?

वक्ता। शिवजीने कहा हैं,—दृढ़ भावना ही सर्व्वसिद्धिकी हेतु है। निरन्तर शिवजीके अनुस्मरणसे जो सर्व्वज्ञत्वादिकी सिद्धि होती है, इसमें भावनाकी दृढ़ता, भावनाका उपचय—अबाधित वृद्धि वा उत्कर्षता ही एक मात्र कारण है ("भावनामात्रमेवात्र कारणं पद्मसम्भवः।")। सांख्य दर्शनमें कहा गया है कि जिनका चित्त विशुद्ध हो गया है, अश्रद्धादि मल जिनके चित्तसे निकल गये हैं, भावनाके उपचय द्वारा वह प्रकृतिकी नाईं सब कुछ कर सकते हैं।* "जिनकी जैसी भावना होती है, वह वैसा ही हुआ करते हैं"—क्या तुमने कभी यह बात सुनी नहीं है?

जिज्ञासु। बहुत बार आप हीके मुखसे यह बात सुनी है, पर मेरे दुर्भाग्यके कारण इसका अर्थ क्या है सो इतने दिन जाननेकी कोशिश नहीं की। 'भावना' किसे कहते हैं?

---

* "भावनोपचयाच्छुद्धस्य सर्व्वं प्रकृतिवत्।"—सांख्यदर्शन ३।२६

वक्ता। भावना मनकी स्पन्दनात्मिका क्रिया है। मुझे मालूम हो रहा है कि 'भावना स्पन्दनात्मिका क्रिया है, यह बात सुन कर 'भावना' क्या चीज है सो तुम्हारे ध्यानमें नहीं आया है। शायद तुम इसे ठीक ठीक नहीं जानती कि कर्म्म किसे कहते हैं, और मन कौनसी चीज है। जो जिस विषयकी भावना नहीं करता, वह उस विषयके बारेमें कुछ जान नहीं सकता। 'स्पन्दन' शब्द 'हिलना', 'गति' इत्यादि अर्थका वाचक है। चाहे चक्षुरादि इन्द्रियग्राह्य' वाह्य जगत् लिया जाय, चाहे आन्तर जगत् लिया जाय, दोनों ही गतिकी मूर्त्ति हैं, दोनों ही कर्म्मके रूप हैं। अन्तर जगत्, आन्तर 'कर्म्म और मन, ये एक ही चीज हैं। जिस तरह 'पुष्प' और तदन्तर्गत 'सौरभ' (उसमें रहती हुई सुगन्धि) आपसमें अभिन्न हैं, जिस तरह उनमें कोई भेद नहीं, उसी तरह 'कर्म्म' और 'मन' इन दोनोंमें कोई भेद नहीं। आन्तर कर्म्म ही वाह्य जगत्का आकार धारण करता है। तुम चक्षुरादि इन्द्रियों-से जो कुछ जानती हो, जिन वस्तुओंके अस्तित्वकी उपलब्धि करती हो, वे आन्तर कर्म्मके ही फल है। सावधानतासे निष्पादित (किया हुआ) ऐहिक या प्राक्तन (पूर्वजन्मका) कर्म्म ही पुरुषकार है। जिस तरह कज्जलकी कालिमाका नाश होनेसे कज्जलका कुछ भी नहीं रहता, उसी तरह स्पन्दनात्मक कर्म्मका नाश होनेसे मनका कुछ भी नहीं रहता। बह्नि और उष्णताकी नाई 'चित्त' और 'कर्म्म' अभिन्न रूपसे मिलित हैं, अतः एकका नाश होनेसे दूसरेका नाश अवश्य होनेवाला है। चित्त

स्पन्दनात्मक क्रियाको प्राप्त होकर "धर्म्म" और "अधर्म्म" रूपमें परिणत होता, फिर कर्म्म भी चित्तके फलभोगानुरूप स्पन्दनात्मक विलासको प्राप्त होकर 'चित्त' होता है। अनुभूत अर्थकी भावना ही 'मन' है, यह भावना स्पन्दधर्म्मिणी होकर विहित और निषिद्ध क्रिया होती है। इस क्रियाका जन्मान्तरादि रूपसे भावित रूप उसी तरहके फलका अनुवर्त्ती हुआ करता है। सर्व्वशक्तिमान्, अनन्त, आत्मतत्वकी संकल्पशक्ति द्वारा कल्पित जो रूप है, वही 'मन' है। जिस तरह जगत्‌में कोई गुणहीन गुणी नहीं है, उसी तरह कल्पनात्मक-कर्म्म-शक्ति-शून्य (जिसमें कल्पनात्मक कर्म्मशक्ति न हो, ऐसा) मन भी नहीं हैं। जिस तरह वह्नि और उष्णताकी पृथक् सत्ता नहीं है, उसी तरह 'कर्म्म' और 'मन'की भी पृथक् सत्ता नहीं हैं। जिनका मन जितना विमल होता है, अर्थात् जो जितना विशुद्ध कर्म्म किया करते हैं, उनकी भावना भी उतना ही विशुद्ध हुआ करती है। भावनाकी विशुद्धिके मात्रानुसार कर्म्मकी सिद्धि हुआ करती है। जिनकी जिस तरहकी भावना होती है, उनकी उसी तरहकी सिद्धि हुआ करती है, जो जैसा श्रद्धावान हैं उनकी वैसी ही फलप्राप्ति हुआ करती है। जो सर्व्वदा सर्व्वशक्तिमान् सर्व्वज्ञ, करुणासागर, भक्तवत्सल भक्तपालनतत्पर शिवजीका ध्यान करते हैं, शिवजीकी भावना करते हैं, वह, शिवजीकी कृपासे शिवजीका जो कुछ है, शिवा वा प्रकृतिका जो कुछ है, उन सभोंके अधिकारी हुआ करते हैं, करुणामय शिवजी उनके यथार्थ शरणागत भक्तको (जिस तरह

पिता सत् पुत्रको उनके सर्व्वस्वका अधिकारी बनाते हैं, उसी तरह) उनको सर्व्वस्व दिया करते हैं, सर्व्वशक्तिमान् सर्व्वज्ञ शिवजी उनके भक्तको सर्व्वशक्तिमान् बनाते हैं, सर्व्वज्ञ बनाते हैं। क्यों रमा, क्या अब कुछ समझनेमें आया कि, निरन्तर शिवजीका-अनुस्मरण करनेसे क्यों सर्व्वज्ञताका लाभ होता है, क्यों सर्व्व-सम्पूर्णशक्तिताकी प्राप्ति होती है, क्यों अनन्तशक्तिमत्ताका विकाश होता है ?

जिज्ञासु। अगर शिवजी सर्व्वशक्तिमान् हों, अगर वे अनन्त ज्ञानमय हों, दयामय हों, विश्वके परम पिता हों, (और) मैं अगर शिवजी सर्व्वशक्तिमान्, अनन्तज्ञानमय, दयामय, तथा मेरे परम-पिता हैं इसे समझ इस भावकी दृढ़रूपसे भावना कर सकूं, अगर दूसरे किसी विषयमें चित्त न देकर सर्व्वदा उन्हींका अनु-स्मरण कर सकूं, तो, जिस तरह लौकिक माता-पिताके पाससे उनका जो कुछ है सो सन्तान पाया करती है, उसी तरह मैं भी जो कुछ,मेरा आवश्यक है उसे मेरे परम पिताके पाससे क्यों न पाऊंगी ? यद्यपि मैं आपकी सब बातोंका अर्थ समझ न सकी तौभी, मुझे मालूम होता है कि, यही (जो कि मैंने अभी कहा) उनका सार है।

वक्ता। यह पूरा सत्य है कि, यही उनका सार है। यह सभी कोई जानते हैं, कि मनुष्य राजा होता है, धनवान् होता है, दूसरोंका प्रभु होता है, आचार्य्य वा ज्ञानोपदेष्टा होता है, पर किस तरह मनुष्य राजा होता है, किस तरह धनवान् होता है,

दूसरोंका प्रभु होता है, बहुतेरे ही इसे नहीं जानते, बहुतेरे ही इसे नहीं सोचते। मनुष्य साधारणतः यही जानता, कि 'कर्म्म' करनेसे फल मिलता, पर 'कर्म्म' क्या चीज है, कहाँसे मनुष्यको कर्म्म करनेकी शक्ति मिलती है, शक्तिकी मूल प्रसूति कौन है, मनुष्य साधारणतः इसे नहीं जानता। शिवा वा शक्तिसे युक्त शिव ही वस्तुतः सब शक्तिकी मूल प्रसूति है। जिनका यह विश्वास सुदृढ़ हुआ है, कि शिव ही इच्छाशक्ति हैं, शिव ही ज्ञान-शक्ति हैं, शिव ही क्रियाशक्ति हैं, जो (पुरुष) भावनाख्य उपासना द्वारा शुद्ध हुए हैं, निष्पाप हुए हैं, वैसे पुरुषका सर्व्वैश्वर्य्यवान् शिवकी नाईं, सर्व्वशक्तिमती प्रकृतिकी नाईं सर्व्वैस्वर्य्य हुआ करता है। "अल्पबुद्धि मनुष्य बुद्धिहीनताके कारण पूर्णशक्तिमान् को छोड़कर उनको परिच्छिन्न शक्तिकी उपासना करता है, ख्याल करता है, मेरे शरीर और मनके बल ही मैं कृतकार्य्य होता हूं मैं (अपने) पुरुषकारसे ही सिद्धिको लाभ करता हूं।" शिवही पुरुष श्रेष्ठ हैं,—शिव ही सर्व्व पुरुषके मूल हैं, उनका शरणागत होना और परिच्छिन्न शक्तिको छोड़कर सर्व्वसम्पूर्णशक्तिका आश्रय लेना एक ही बात है। अतएव यथार्थ रूपसे अनन्यासक्त हो, एकाग्र चित्तसे शिवजी का ध्यान करनेसे 'प्रकृत पुरुषकार' होता है; यही श्रेष्ठ पुरुषकार है। शायद तुमने सुना होगा, कि योगीलोग अपने संकल्प द्वारा साधारण (पुरुषों) का असाध्य कर्म्म भी कर सकते हैं। यह कैसे? निबिष्टचित्त हो चिन्तन करनेसे मालूम होगा,

कि शिवजी वा ईश्वरकी कृपा ही इसका कारण है। शिवजीने औषधिकी सृष्टि की है, जिस औषधिसे रोगका प्रतिकार होगा, शिवजीने वेदके द्वारा, तथां वेदमूलक शास्त्रोंके द्वारा लोगोंको उसे कह दिया है; मनुष्य विश्वभिषक्, सर्व्वशक्तिमान् शिवजी· से सृष्टि-औषधि द्वारा रोगका प्रतिकार करता है, इसमें मनुष्य-चिकित्सकका कितना कृतित्व है ? इसमें मनुष्य-चिकित्सकको अभिमानसे स्फीत होनेका क्या कारण है ? यह तो हुई स्थूल चिकित्साकी बात। मनुष्यके अन्तरमें जो सर्व्वरोगहर चिकित्सक हैं, मनुष्यमात्र ही उनको देख नहीं पाता। मानस चिकित्सा द्वारा स्थूल चिकित्सकोंसे असाध्य जान परित्यक्त रोगी भी नीरोग होता है। भक्तोंका दुःख देखकर करुणामय शिवजीके दयार्द्र चित्तमें करुणाका उदय होता है, इसलिये वे प्राकृत जनोंकी नाई राग-द्वेषके अधीन नहीं हैं। विश्वास करना, कि राग-द्वेषके वशवर्त्ती न होकर भी सर्व्वज्ञ सर्व्वसम्पूर्णशक्ति ईश्वर (शिव) जीवको अनुग्रह कर सकते हैं।

जिज्ञासु। मुझे यह समझा दीजिये, कि जिनका कोई प्रयोजन नहीं, जो पूर्ण हैं, जो निष्काम हैं, उनको किसी कर्म्म करनेकी प्रवृत्ति क्यों होगी ?

वक्ता। पूर्णका, निष्कामका, नित्यमुक्तका, नित्यतृप्तका, अपना प्रयोजन कुछ न रहनेपर भी भूतानुग्रह (प्राणियों पर कृपा करना) प्रयोजन है। अपूर्णकामकी नाईं 'राग' न रहनेपर भी परम कारुणिक ईश्वरमें करुणालक्षण राग है। तुमने पहले ही

सुना है, कि भगवान् वेदव्यासने योगसूत्रके भाष्यमें यह बात कही है, कि ईश्वरका जीवानुग्रहरूप प्रयोजन रहनेपर भी, ईश्वर करुणालक्षण रागसे युक्त होनेपर भी नित्यमुक्त हैं ("तस्यात्मानुग्रहप्रयोजनाभावेऽपि भूतानुग्रहः प्रयोजनम् ।"—योगसूत्र-भाष्य)। जीवका 'राग' क्लेशात्मक है, जीवका राग बन्धनका कारण है, ईश्वरका करुणालक्षण (करुणा ही हुआ है लक्षण जिसका) 'राग' क्लेशात्मक नहीं, नित्यमुक्तत्वका हानिकर नहीं। जगत्के अधिपति कल्याणगुणोंके आकर हैं, भगवान्‌की करुणा आगन्तुकी नहीं है, यह उनके लिये स्वभावसिद्ध है। राग-द्वेषविहीनके लिये कोई कर्म्म करना सम्भव नहीं, जो जन्म ग्रहण करते हैं, स्थूलरूपमें आविर्भूत होते हैं, वही हमलोगोंकी नाईं अपूर्ण हैं, राग-द्वेषके अधीन हैं—अल्पज्ञ मनुष्यका इस प्रकारका विश्वास होना ही प्राकृतिक है। "क्या कारण है, कि 'ईश्वर' होनेपर भी, किसी प्रकारका अभाव वा प्रयोजन न रहनेपर भी, देवतालोग जन्मग्रहण करते हैं? भगवान् यास्कने इस प्रकारके प्रश्नके उत्तरमें कहा है—कोई अभाव न रहनेपर भी, लोकानुग्रहके लिये 'ईश्वर' अग्नि, वायु, सूर्य्य इत्यादि देवताओंके रूपमें आविर्भूत हुआ करते हैं, (क्योंकि,) अग्निसूर्य्यादि रूपमें प्रगट न होनेसे लोगोंकी कर्म्मसिद्धि नहीं होती।*

---

* कर्म्मजन्मानः—निरुक्त। "कर्म्मफलसिद्धये लोकस्य अग्निवायुसूर्य्या जायन्ते। न ह्येतेभ्यः ऋते लोकस्य कर्म्मफलसिद्धिः स्यात्।"—निरुक्त टीका।

SANSKRIT UNIVERSITY

जिज्ञासु। क्या ईश्वर विना अग्नि-वायु-सूर्य्यादि रूपमें आविर्भूत हुए लोगोंके कर्म्मसाधन करनेमें समर्थ नहीं होते?

वक्ता। शक्ति क्रिया करेगी, क्रिया करना शक्तिका धर्म्म है; प्रवलतर विरुद्ध शक्तिके द्वारा अभिभूत न होनेसे शक्तिका प्रकाश होगा ही। जिसकी (कुछ) क्रिया नहीं, जिससे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता, उसको सत्ताकी उपलब्धि नहीं होती, वह वास्तव में है या नहीं, यह मालूम ही नहीं होता। बाधा न पानेसे शक्तिकी क्रियोन्मुख अवस्था नहीं आती, अगर कोई (दया करने योग्य) पात्र न मिले, तो, दयालु (पुरुष) की दयावृत्तिका स्फुरण नहीं होता, और अर्थी न मिलनेसे दाताकी दानवृत्तिका विकाश नहीं होता। 'ईश्वर' नित्य अणिमादि (ऐश्वर्य्यों से) ऐश्वर्य्यावान् होनेपर भी, अगर उनको ईशितव्य (ऐश्वर्य्य प्रकाश करनेका) पात्र न मिले, तो उनका ऐश्वर्य्य अप्रकटित—अनभिव्यक्त ही रहता। "ईश्वर क्यों शरीर ग्रहण करते हैं, आत्मप्रयोजन न रहनेपर भी क्यों वेदादि द्वारा लोगोंको धर्म्म-ज्ञानका उपदेश करते हैं?" इस प्रश्नका उत्तर यही है, कि लोकानुग्रहके लिये ईश्वर शरीर धारण कर सकते हैं, लोगोंपर अनुग्रह करनेका समय आ पहुंचनेहीसे उनका शरीरधारणसामर्थ्य आपहीसे (स्वभावतः) व्यक्त अवस्थाको प्राप्त होता है। ईश्वर सर्व्वशक्तिमान् हैं, वे शरीर ग्रहण न कर भी लोगोंके कर्म्म साध सकते हैं, तौभी जो वे शरीर धारण करते हैं, इसका कारण यही है, कि ईश्वरको शरीर धारण करनेकी शक्ति है, ईश्वरत्वको, नित्यमुक्तत्वको अव्याहत रख कर, उसमें

हानि न पहुंचा कर, धर्म्मसंस्थापनके लिये, उनको शरीरधारी (स्थूल शरीरमें प्रगट हुए हैं ऐसा) देखनेके लिये जिन भक्तोंका हृदय व्याकुल हो रहा है, उन भक्तोंके उपकारार्थ उनकी उत्कट अभिलाषा चरितार्थ (पूरी) करनेके लिये ईश्वर शरीर ग्रहण कर सकते हैं ; इसीलिये वे शरीर ग्रहण किया करते हैं।

भगवान् वादरायणने स्वप्रणीत शारीरक सूत्रमें कहा है— "सर्व्वज्ञ, सर्व्वशक्तिमान् ईश्वरही कर्म्मफलदाता हैं ; यह युक्ति तथा श्रुतिके प्रमाणसे सिद्ध होता है, कि, अचेतन, क्षणविध्वंसि कर्म्म कर्म्मकर्त्ताको स्वतन्त्ररूपसे फल नहीं दे सकता ("फलमतः उपपत्तेः।" "श्रुतत्वाच्च।"—वेदान्तसूत्र, ३।२।३७ तथा ३।२। ३८)। यह नहीं, कि ईश्वरका बिलकुल ही कोई धर्म्म वा गुण नहीं ; जीवका उपकार करना, अपनी आत्मा यानी अपने स्वरूपका साक्षात्कार करा देना—ये सब कार्य्य ईश्वर किया करते हैं, अतः यह मानना पड़ेगा, कि ईश्वर करुणादि कल्याणगुणोंके आकर हैं। केवल यही नहीं, कि ईश्वर कल्याणगुणोंके आकर हैं, उनका नित्य शरीर भी है ; ईश्वर नित्य निराकार और नित्य साकार हैं। त्रिपाद्विभूति महानारायण उपनिषत्ने कहा है—अगर सर्व्वपरिपूर्ण परब्रह्मका नित्यसाकारत्व स्वीकार न कर उनको केवल निराकार ही कहा जाय, तो निराकार आकाशकी नाईं उनको जड़ कहना पड़ता है। अतः परमार्थतः परब्रह्मके साकारत्व और निराकारत्व ये दोनों ही स्वभाव सिद्ध हैं ("सर्व्वपरिपूर्णस्य परब्रह्मणः, परमार्थतः साकारं बिना केवलनिराकारत्वं यद्यभिमतं तर्हि

केवलनिराकारस्य गगनस्येव परब्रह्मणोऽपि जड़त्वमापद्येत । तस्मात् परब्रह्मणः परमार्थतः साकारनिराकारौ स्वभावसिद्धौ ।"— त्रिपाद्विभूति महानारायण उपनिषत् ।)

महर्षि जैमिनिने धर्म्मको फलका कारण बताया है। इसका (ऐसा कहनेका) अभिप्राय यही है, कि—केवल ईश्वरहीको फलदाता कहनेसे सृष्टि वैषम्यके कारण उनमें पक्षपातित्व तथा निष्ठुरत्वादि दोष आ जाते हैं। संसारमें देखनेमें आता है, कि कोई (अन्यकी अपेक्षामें) सुखी है, कोई बड़ा ही दुःखी है, कोई विद्वान् है, कोई मूर्ख है, कोई धनी है, कोई निर्धन है, कोई राजा है, कोई प्रजा है, कोई स्वास्थ्यसुख भोग रहा है, कोई सर्व्वदा दुःसह रोगकी ही यातना भोगा करता है, कोई धार्म्मिक है, कोई अधार्म्मिक है, कोई नास्तिक है, कोई आस्तिक है। अगर मानी जाय, कि केवल ईश्वर ही फलका कारण हैं, और सब प्राणियोंपर उनकी करुणा बराबर है, तो 'भगवान्की सृष्टि इस प्रकार विषम क्यों हुई, जगत् दुःखमय क्यों हुआ ?' लोगोंके मनमें इस प्रकारके जो प्रश्न उठा करते हैं, उनका कोई समाधान हो नहीं सकता। जैमिनि, गोतम, बादरायण आदि ऋषियोंने श्रुति तथा युक्तिके प्रमाणसे समझाया है, कि ईश्वर जीवके अनादि कर्म्मकी अपेक्षा कर * सृष्टि किया करते हैं, जीवका कर्म्मवैचित्र्य ही सृष्टिवैचित्र्यका कारण है। तुमने मुझसे पूछा था—क्या जीवके कर्म्म न करनेपर भी ईश्वर

* यानी पुण्य-पापरूप कर्म्मके अनुसार।

फल देते हैं? तुम्हारे इस प्रश्नका मैं संक्षेपमें उत्तर देता हूं। 'फल'-शब्द कर्म्मकी निष्पन्न अवस्थाका वाचक है। तो फिर, विना कर्म्मके फलनिष्पत्ति किस तरह हो सकती है।

जिज्ञासु। मेरे इस प्रकार प्रश्न करनेका मतलब यही है, कि—अगर मैं दूसरा किसी प्रकार कर्म्म न कर केवल शिवजीकी पूजा करुं, अनन्यचित्त हो, केवल शिवजीहीका ध्यान करूं, तो क्या शिवजी मेरे धनका अभाव दूर करेंगे? अगर बीमार होकर मैंने दवा न ली, तो क्या शिवजी मुझे रोगसे मुक्त करेंगे? जिस तरह कुम्भकार मृत्तिका और दण्ड-चक्रादि द्वारा घट वनाता है, जिस तरह घट वनानेके लिये कुम्भकारको बाहरसे कई एक चीजोंका संग्रह करना पड़ता है, क्या जीवका उपकार करनेके लिये जगत्की सृष्टि करनेके लिये ईश्वरको भी (उसी तरह) बाहरकी चीज़ोंका संग्रह करना पड़ता?

वक्ता। नहीं। ईश्वर सर्व्वव्यापक हैं, ईश्वर सर्व्वशक्तिमान् हैं, अतः उनसे वाह्य देश या वाह्य सामग्री कौनसी रह सकती है? सर्व्वशक्तिमान् सर्व्वव्यापक ईश्वरको किसी वाह्य साधन-का संग्रह क्यों करना पड़ेगा? ईश्वर दूसरे साधनकी अपेक्षा न रख आपही सब कर सकते हैं। मन्त्र, इतिहास और पुराणका पाठ करनेसे मालूम होता है कि महाप्रभावशाली देवगण, पितृगण, ऋषि वा योगिगण किसी वाह्य साधनकी अपेक्षा न रख स्वतः अनेक शरीर, प्रासादादि और रथादिका निर्म्माण कर सकते हैं। भगवान् यास्कने कहा है—'देवतालोग ईश्वर हैं, वे ऐश्वर्य्यवान्

हैं, महाप्रभावशाली हैं, इसलिये आत्माही, आत्मशक्ति ही इनके रथ, आयुध, इषु (बाण) आदि हुआ करती हैं, इनके संकल्प—मानस कर्म्म वा इच्छामात्र हीसे सब हुआ करता है, देवतादि ऐश्वर्य्य-वानोंकी आत्मा ही सब कुछ है ("आत्मैवैषां रथो भवत्यात्माश्व आत्मायुधमात्मेषव आत्मा सर्व्वं देवस्य देवस्य ॥"—निरुक्त, दैवतकाण्ड)। "देवादिवदपि लोके" इस वेदान्त सूत्रके भाष्यमें भाष्यकार पूज्यपाद शंकराचार्यने कहा है—कुम्भकारादि और देवादि ये दोनोंही चेतन पदार्थ होनेपर भी कुम्भकारादिको घटादि कार्य्यके आरम्भमें मृत्तिका, दण्ड, चक्र आदि बाह्य साधनोंकी अपेक्षा करनी पड़ती है, पर देवादि विशिष्ट ऐश्वर्य्यवानोंको वैसा करना नहीं पड़ता।* अतः यह असम्भव नहीं, कि सर्व्वशक्तिमान् ईश्वर बाह्य-साधनकी अपेक्षा न कर आपसे ही सब कुछ कर सकेंगे। पातञ्जल दर्शनमें योगियोंके अलौकिक सामर्थ्य वा ऐश्वर्य्यकी बात है। यथाविधि योगाभ्यास करनेसे अणिमादि अष्ट ऐश्वर्य्योंका बिकाश होता है। बहुतेरे ही जानते हैं,(इस विषय पर अनेक जनश्रुति हैं) कि योगिलोग अपने संकल्पमात्रसे भूत तथा भौतिक वस्तुओंकी सृष्टि कर सकते हैं। क्या तुमने क्राइष्ट (Christ) का नाम सुना है?

जिज्ञासु। सुना है ; वे क्रीष्टानोंके देवता हैं, वे उनको ईश्वर-पुत्र कर मानते हैं, उनकी पूजा करते हैं।

वक्ता। प्रतीच्य सुधियोंके ग्रन्थ पढ़नेसे मालूम होता है, कि यह क्राइष्ट विभूतिसम्पन्न पुरुष थे। क्राइष्ट् भूतजयी थे, भूत

तथा भौतिक वस्तुओंके ऊपर उनका प्रभुत्व (प्रभाव) था, विना वाह्य साधनके वे संकल्प ही से भौतिक वस्तुओंकी सृष्टि कर सकते थे, सुरा तथा विविध खाद्य द्रव्यको सृष्टि कर दूसरोंको खिला सकते थे। * अविकृत वैदिक आर्य्यों के पास यह कार्य्य आश्चर्यजनक, अतिप्राकृतिक या अद्भुत न मालूम होगा।

जिज्ञासु। तो (यही प्रार्थना करती हूं, कि) मेरी यह धारणा (ज्ञान) दृढ़ हो, कि—मैं किसी प्रकारका सन्देह न कर विश्वास कर सकूंगी, कि शिवजी दरिद्रके नित्य तथा अक्षय कोषागार हैं, विश्वास कर सकूंगी, कि विना स्थूल औषधिके वे रोगार्त्त को निरामय कर सकते हैं, कि अगर सब छोड़, सर्व्वान्तःकरणसे उनकी शरण ले सकूं, तो मुझे सब कुछ मिलेंगे, मैं सर्व्वज्ञ होऊंगी, इस ज्वाला-यन्त्रणामय मृत्युराज्यको अतिक्रम कर चिरशान्तिमय अमृतधामको पहुंच सब दिनके लिये निडर हो परमानन्दसे निवास कर सकूंगी।

वक्ता। 'शिव' और 'शिवा' के स्वरूपके वारेमें यथाप्रयोजन कुछ कहा गया। मैंने इसे संक्षेपमें समझानेकी कोशिश की, कि

---

* "यथा हि कुलालादीनां देवादीनां च समाने चेतनत्वे कुलालादयः कार्य्यारम्भे वाह्यसाधनमपेक्षन्ते न देवायः तथाद ब्रह्म चेतनमपि न वाह्यं साधनमपेक्षिष्यत इति।"—शारीरक भाष्य।

"He (christ) could bring to him and to others wine and food out of the elements through His power of thought or spiritual power * * *. He could overcome thc elements or create any material article which he needed"—The Gift of understanding.

शिवजी सर्व्वदुःखहर्त्ता हैं, वे सर्व्वसुखविधाता हैं, सर्व्वज्ञ शिव जी ही ज्ञानदाता हैं, अज्ञानतिमिरके नाशकर्त्ता हैं, शिवजी दरिद्रके नित्य तथा अक्षय कोषागार हैं, सर्व्वाधार शिवजी ही में सब कोई शयन करते हैं। 'कर्म्म न करनेसे शिवजी फल नहीं देते' इस बातका अभिप्राय क्या है, सो भी तुमको बताया। शिवपूजा किसे कहते हैं सो समझानेके समय मैं तुमको स्पष्ट रूपसे समझानेकी कोशिश करूंगा, कि जो सब छोड़ अविराम शिवजीका अनुस्मरण करते, सर्व्वदा शिवजीकी पूजा करते, वे कापुरुष नहीं हैं, पुरुषकारविहीन नहीं हैं, सर्व्वान्तःकरणसे यथार्थरूपसे शिवजीकी पूजा कर सकनेसे दूसरा कर्म्म करनेकी कुछ जरूरत ही नहीं होती। अगर यथार्थ रूपसे शिवपूजा करनी हो, तो मनुष्य 'पुरुषकार' कहनेसे साधारणमें जो कुछ समझता, उस स्थूल परिच्छिन्न पुरुषकारको सूक्ष्म तथा व्यापकतर पुरुषकारमें परिणत करना होगा ; शिवजी पूर्णपुरुष हैं, उनका यत्नही, उनकी इच्छा ही, मेरा यत्न है, मेरी इच्छा है, सिवाय उनके मेरा कुछ भी नहीं है, उनको छोड़ मैं कुछ भी नहीं हूं, उनको छोड़ मैं अकिञ्चन हूं, मेरे 'मेरे' कहनेसे जो कुछ मैं समझता था, वे सब उन्हींके हैं, मैं ही उनका हूं, मेरी अहन्ता शिवजीके अनन्त अहं सागरका बुद्बुद मात्र है— जो ठीक इस तरहकी भावना कर सकते, इस तरह शिवजीके चरणोंमें आत्मसमर्पण कर सकते, उन्हींका पुरुषकार यथार्थ पुरुषकार है, श्रेष्ठ पुरुषकार है, दूसरोंका पुरुषकार क्षुद्र पुरुषकार है, नगण्य पुरुषकार है, वह अल्पज्ञ वा उन्मत्त (पुरुष) की

ही चेष्टा हैं। अतः यथार्थरूपसे शिवजीकी पूजा करना 'सर्व्व-शक्तिमान्' 'सर्व्व' को आत्म-निवेदन करना कापुरुषता नहीं है।

जिज्ञासु। अब 'रात्रि' कौनसा पदार्थ है सो कहिए।

वक्ता। 'शिवजी कौन् हैं?' इसके सम्बन्धमें मैंने जो कुछ कहा, उसे सुन कर तुम्हें जो ज्ञान हुआ, संक्षेपमें उसका मनन करो। 'शिवरात्रि' शब्दका अर्थ इस तरह कहा जा सकता है— "शिवप्रिया रात्रि—शिवरात्रि", अथवा, "शिव ही रात्रि हैं, जो 'शिव' हैं, वही 'रात्रि' हैं, वही 'शिवा' वा 'भुवनेश्वरी' हैं।" क्या तुम ख्याल कर रही हो, कि 'रात्रि' से मनुष्यमात्रही का परिचय है, इसका अर्थ सभी कोई जानते हैं? अतः 'रात्रि' शब्दका अर्थ विचार करनेका विशेष प्रयोजन नहीं?

जिज्ञासु। नहीं दादा! मेरे ख्यालमें ऐसी बात आई नहीं है, मेरे क्षुद्र मनको वैसा ख्याल करनेकी योग्यता नहीं है। मैं ऐसाही ख्याल करनेमें एकान्त अभिलाषी हूं, कि आप कृपा कर जो कुछ कहते हैं, वही परम उपादेय है, वही मेरा अवश्य श्रोतव्य और मन्तव्य है। मैं तो कुछ भी नहीं जानती, मेरा अभिमान करनेका हैं ही क्या? पर, तौभी जो :मैं पूर्ण रूपसे निरभिमान हो नहीं सकती, यही बड़े खेदकी बात है। आपके मुखसे सुना है, कि 'मेरा कुछ भी नहीं है, मै अकिञ्चन हू" शिवजी-की कृपासे जिस भाग्यवान्‌को इस प्रकार दृढ़ विश्वास होता है, वही शिवजीको जान सकते, वही शिवजीका दर्शन पाते, वही सर्व्वाधार, सर्व्वाश्रय, ज्ञानमय, प्रेममय, करुणावरुणालय

शिवजीके चरणोंमें यथार्थरूपसे 'नमो ममः' करनेमें समर्थ होते हैं। करुणामय शिवजीने कृपाकर मुझे अकिञ्चन किया है, पर आज-तक मुझे पूर्णतया निरभिमान नहीं किया है, विमलचित्त नहीं किया है, आज तक मुझे 'मैं तुम्हारी' कह उनके चरणोंमें लुण्टित होनेकी शक्ति नहीं दी है।

चतुर्थ परिच्छेद ।

शिवजीके स्वरूपके बारेमें जिज्ञासुकी जैसी धारणा हुई है।

जिज्ञासु। शिवजीका स्वरूप दिखानेके लिये आपने जो कुछ कहा है, क्या उन सबको मैं ठीक २ ख्याल में रख सकी हूं, दादा! क्या मैं यथार्थरूपसे उनका तात्पर्य ग्रहण करनेके योग्य हूं? तौभी, आपके उपदेश सुन कर जो कुछ ख्यालमें आया है, सो ही कहती हूं। आपके शिवतत्त्व विषयक उपदेश सुनकर मुझे ज्ञान हुआ है,—'शिवजी ही सब कुछ हैं'; 'मैं शिवजीकी हूं"; 'शिवजी सुखमय हैं; शिवजी ज्ञान-विज्ञानमय

हैं; शिवजी दयामय हैं; शिवजी प्रेमपारावार हैं; शिवजी मृत्युञ्जय हैं; शिवजी अमृत स्वरूप हैं; सुखमय शिवजी सर्व्व सुखके दाता हैं; त्रिविध दुःखोंसे स्पृष्ट होनेके अयोग्य (अर्थात् जिनको त्रिविध दुःख किसी तरह स्पर्श नहीं कर सकता) शिवजी सब दुःखके हरण करनेवाले हैं; निष्पाप शिवजी सर्व्व-कलुषहन्ता (सब पापके नाश करनेवाले) हैं; सर्व्वशक्तिमान् सर्व्वज्ञ शिवजी मूर्खके भी ज्ञानदाता हैं; शिवजी धनहीनके नित्य तथा अक्षय कोषागार हैं; शिवजी रोगार्त्तके अव्यर्थ महौषध हैं; शिवजी विश्वके पिता हैं; विश्वकी माता हैं; शिवजी सर्व्वभावमय हैं; शिवजी भवरोगवैद्य हैं; विश्वप्राण शिवजी विश्वके प्राणदाता हैं; जो कुछ सत् है वही शिवजी हैं; सिवाय शिवजीके सब कुछ असत् हैं, जीव, चाहे वह समझे या न समझे, इसी शिवजीके लिये ही सदा चञ्चल है, आनन्दमय, ज्ञानमय, अमृतमय, शिवजीको पानेहीके लिये जीव सर्व्वदा व्याकुल है। 'शिवजी कौन् हैं' इसके बारेमें आपके मुखसे उपदेश सुन कर मुझे (दृढ़ भूमिक न होने पर भी) ऐसी ही धारणा हुई है। 'क्या कर्म्म न करनेसे भी शिवजी फल देते हैं?' मेरे इस प्रश्नका आपने जैसा समाधान किया है, वह मुझे बड़ाही अच्छा लगा है। जो यथार्थरूपसे शिव पूजा करते हैं, क्या वह (कोई) कर्म्म नहीं करते? 'कर्म्म करना' कहनेसे मैं पहिले जो कुछ समझती थी, अब, कर्म्मके सम्बन्धमें आपके उपदेश सुनकर 'कर्म्म करना' कहनेसे मैं ठीक उसे ही न समझूंगी। यद्यपि इसे पूर्णरूपसे (अपने)

अनुभवमें ला न सकी हूं, तौभी अब समझी हूं, कि 'कर्म्म करना' कहनेसे पहले जो कुछ समझती थी 'वह कर्म्म करने'का स्थूलरूप है। (अब) इस बातका कुछ आभास मिला है, कि 'मन' और 'कर्म्म','अग्नि' और उष्णताकी नाईं अभिन्न पदार्थ हैं। कुछ कुछ यह बात समझनेमें आई है, कि मानस कर्म्म भी कर्म्म ही है, मानसकर्म्म सर्व्व प्रकार शारीर कर्मकी सूक्ष्म अवस्था है। 'भावना' कौनसी चीज है, सो तो पहिले कुछ भी नहीं समझती थी, अब आपकी कृपासे 'भावना' क्या चीज है, सो कुछ-कुछ ख्यालमें आया है।

वक्ता। 'मन' कौनसा पदार्थ है, सो मैं तुम्हें क्रमशः अच्छी तरह समझानेकी कोशिश करूंगा। 'मनहीसे वाह्य जगत्का परिणाम हुआ करता है' 'मनका स्पन्दन ही सर्व्व प्रकार वाह्यकर्म्मका मूल कारण है', 'भावनाकी महिमा अपार है'—तुम क्रमशः इन तत्वोंको जानोगी। आगे चलकर ठीक तौरसे तुम्हारे ख्याल में आवेगा कि "जिसकी जैसी भावना है, जैसी श्रद्धा है, वह वैसा ही हुआ करता है" इस वाक्यके गर्भमें कितने महामूल्य तत्त्वरत्न हैं। जब यह बात यथार्थरूपसे तुम्हारे अनुभवमें आवेगा कि मनुष्य बिना स्थूल शरीरकी क्रियाके, सिर्फ मानस कर्म्म द्वारा ही, सब कुछ कर सकता, सब कुछ जान और पा सकता, तभी तुम्हारी यथार्थ शिवपूजा होगी, तभी तुम्हारा यह विश्वास सुदृढ़ होगा, कि 'शिवजी ही सब कुछ हैं, शिवजी ही सर्व्वसुखदाता हैं, शिवजी ही त्रिविध दुःखके हन्ता हैं। आज

कल पाश्चात्य चिन्ताशील पण्डितोंके बीच कोई कोई इसे मान रहे हैं कि मानस शक्ति ही सब प्रकारके स्थूल वा भौतिक शक्ति की मूल है, उनमेंसे किसी किसी की समझमें आया है कि मानस शक्ति' 'भावना' 'संकल्प' इत्यादियोंका तत्वानुसन्धान बड़ा ही उपकारक है।* जो कहती थी सो कहो।

जिज्ञासु। 'शिव' और 'शिवा' एक हैं—अभिन्न हैं, इसे सुन कर मुझे वड़ा ही आनन्द हुआ हैं, मैं कृतार्थ हुई हूं,। 'शव' से 'शिव' हुए हैं इस बातका अभिप्राय क्या हैं सो कुछ कुछ समझमें आया है, मुझे विश्वास हुआ है, कि "शव न हो सकनेसे कोई शिव नहीं हो सकता, शिवको जान या पा नहीं सकता" यह एक अमूल्य बात है; मुझे धारणा हुई है, कि पूर्ण रूपसे

---

* "There is no study that will so well repay the student for his time and trouble as the study of the workings of this mighty law of the world of thought—'the law of Attraction ?"

—*Thought Vibration or the law of Attraction in the Thought world by W. W. Atkinson, P. 2.*

"Thought is the force underlying all. And what do we mean by this ? Simply this. Your every act, every conscious act is preceded by a thought." * "As a man thinketh in his heart, so is he'—Character Building : Thought power by R. W. Trine P. P. 2 and 15.

क्या वुद्धिपूर्वक कर्म्म, क्या अवुद्धिपूर्वक कर्म्म, संकल्पही दोनोंका मूल है। जिसकी जैसी श्रद्धा वह वैंसाही हुआ करता है। विशिष्ट संस्कार वा भावनायुक्त अन्तःकरणके अनुरूप सब प्राणियोंकी श्रद्धा हुआ करती है ("श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।"—(गीता)—इन बातोंका मूल्य (पूर्वोक्त बातोंसे) ज्यादह है।

'शव' हो सकनेसे ही, शिवको सब कुछ दे सकनेसे ही यथार्थ शिवपूजा होती है ; मुझे दृढ़ विश्वास हुआ है कि 'जिनमें सब कोई शयन करते हैं, * जो सबके आधार हैं, जो सर्व्वकार्य्यके परम कारण हैं', वही सब प्रकार सुखके देने वाले हैं, वही सर्व्व दुःखहर हर हैं, वही भवभेषज हैं—अगर इस बातको पूर्णतया अनुभव कर सकूं तो कृतकृत्य होऊंगी। अज्ञानके नाशके लिये शिवजीहीको पुकारूंगी, इन्हींकी शरण लूंगी, क्षुत्‌पिपासासे क्लिष्ट होनेसे इन्हींको कहूंगी—'पिताजी ! मुझे क्षुधा लगी हैं, मुझे प्यास लगी हैं, धनका अभाव होनेसे शिवजीहीको कहूंगी 'हे

---

*"शी' धातुसे 'शिव' पद निष्पन्न हुआ है। 'शी' धातुका अर्थ है—शयन करना, सो जाना (निद्रित हो जाना)। जिनमें सब कोई शयन करते जिनमें या जिनके द्वारा धृत होकर सब कोई विद्यमान रहते, जो सबके, आधार है, जिनसे सब कोई उत्पन्न हुए हैं, स्थिति कालमें जिनमें सब कोई वृत हो रहते है, लय कालमें जिनमें लीन होते हैं वह 'शिव' हैं। अथया जो विकार रहित हैं, जिनका कभी किसी प्रकार परिवर्तन नहीं होता, जो सदा एक ही भावमें रहा करते हैं, निर्व्वकार हैं इसलिये, सदा शान्त हैं इसलिये जो तरंगरहित समुद्रकी नाईं हैं, वह 'शिव' हैं। परिवर्तन (एक भावसे अन्य भावकी प्राप्ति) जिसका स्वभाव है, यह जगत् जिस स्थिर—ध्रुव आधारपर शयन कर रहता है, वह 'शिव'है ("शेते तिष्ठति नन्दरतिभ्यां न विक्रियते—गुणावस्थारहितः शान्तः शिवः शम्भुः।"—उणादिवृत्ति)। किसी-किसीने कहा है—जो अशुभका ह्रास करते हैं, अशुभ वा अकल्याणको घटा देते हैं, उसका नाश करते हैं, जो सुखस्वरूप हैं, मंगलमय हैं, वही 'शिव' है।

—द्वितीय परिच्छेद।

देव! धनके अभावके कारण मुझे कष्ट हो रहा है, ऋणके कारण दुःख होनेसे ऋणमोचक शिवजीके पास ही प्रार्थना करूंगी—'हे देव! मुझे ऋणमुक्त करो; जब व्याधिकी यातना असह्य मालूम होगी, तब करुणामय विश्वचिकित्सक शिवजी हीकी कहूंगी—'देव! मुझे रोगमुक्त करो, शान्तिमय! मुझे शान्ति दो, दुर्भिक्ष आ जानेसे 'शिव' नाम जप करूंगी, यथाशक्ति शिवजीकी पूजा करूंगी, आपसे यथार्थ रूपसे शिवपूजा करनेको सिखूंगी; सर्वान्तःकरणसे सर्व्वदा शिवजीके चरणमें 'नमोनमः' करनेका अभ्यास करूंगी, जिस किसीको तकलीफमें पाऊंगी, आपके उपदेशानुसार उसीके लिये सर्व्वदुःखहर, भक्ततापनिवारक 'हर'के चरणोंमें 'नमोनमः' करूंगी (उनसे) प्रार्थना करूंगी, "जगत्को 'शिवमय' करो"; जिसमें आपके आदेशानुसार सिवाय शिवजीकी सेवाके और कोई कामना मेरे हृदयको कलुषित (अपवित्र) न कर सके, इस लिये दिन-रात 'नमः शिवाय' 'नमः शिवाय' इस मन्त्रका अर्थ-भावना करती हुई जप करूंगी। दादा! शिवजीके स्वरूपके सम्बन्धमें आपने जो कुछ कहा है, उसे सुन कर मुझे ऐसा ही ज्ञान हुआ है, इसी तरहका संकल्प हुआ है।

वक्ता। धनार्थी दरिद्र साक्षात्-परम्परा भावसे शिवजीके पाससे धन पाया करते हैं, विद्यार्थी शिवजीके पाससे ही विद्या-लाभ किया करते हैं, रोगार्त्त शिवजीके द्वारा ही निरामय होते हैं—फलतः शिवजी ही जीवके एकमात्र 'शिव'-वा-सुखदाता हैं—तुम्हें

जो इस बातका कुछ आभास मिल गया है, इसे जान मुझे बहुत ही आनन्द हुआ।

"शिवजी दरिद्रके नित्य तथा अक्षय कोषागार हैं", सर्व्व-शक्तिमान्, करुणामय, सर्व्वज्ञ, सर्व्वक्लेशनाशक, कल्याण गुणोंके आकर विश्वपिताने उनके सन्तानोंका अपनी सर्व्वस्वका (उनके जो कुछ हैं उन सबके) अधिकारी बनाकर उनकी सृष्टि की है"—जिन्होंने वेद तथा शास्त्रके उपदेशानुसार, सद्गुरुकी कृपासे इस बातका अनुभव किया है, इसे विश्वास किया है, उनके लिये विश्व-पिताके अनन्त कोषागारका द्वार सदा ही उन्मुक्त है, वे भगवान्से प्रार्थना करते ही, अथवा बिना किसी प्राथनाके भी सभी कुछ पाया करते हैं। पूर्णकी सत्-सन्तान पिताकी पूर्णतासे स्वयं पूर्ण होंगी, क्या यह बात असम्भव है? क्या यह विश्वासयोग्य नहीं है? जो श्रद्धावान् हैं, जो जगत्-निर्व्वाहके नियमोंको जानने वाले हैं अथवा (यों कहा जाये कि) जो पूर्ण विज्ञान-विद् हैं, वे एकाग्रचित्त हो, जिस विषयकी प्रार्थना करते हैं, भगवान् उन्हें वही, दिया करते हैं, अभाव-का भय उनको फिर कभी सता नहीं सकता, किसी प्रकारका क्लेश उनपर फिर किसी तरहका अत्याचार करनेका साहसी नहीं कर सकता। किसी प्रतीच्य, सुविद्वान्, धीमान् ईश्वरानुरागीने अनेकतः यही बात कही है,—(देखनेमें आता है, कि) सर्व्वत्र सर्व्वदा समदृष्टि, वेदमय शिवजीकी कृपासे इनके चित्तमें बहुत वेदबोधित सत्यार्थका विकाश हुआ है। इन्होंने स्पष्ट रूपसे कहा है—जो यथार्थमें ज्ञानी हैं, जो ईश्वरकी दी हुई शक्तियोंका यथार्थ रूपसे

प्रयोग करते हैं, सर्व्वशिवंकरी शिवा वा प्रकृतिका कोषागार उनके लिये सदा ही मुक्तद्वार रहता है, ऐसे पुरुषके प्रार्थना करते ही (पर, प्रार्थना यथाविधि होनी चाहिए) उनके सारे अभाव पूर्ण हो जाते हैं।* अब रात्रि कौन् पदार्थ है, सो सुनो।

पञ्चम परिच्छेद।

रात्रि कौनूसा पदार्थ है ? वेदमें 'रात्रि' शब्दका प्रयोग।

उणादिसूत्रकारके मतमें दानार्थक 'रा' धातुसे 'रात्रि' पद निष्पन्न हुआ है। जो लोगोंको कर्म्मसे अवसर प्रदान करती है, अथवा जो निद्रादि सुख प्रदान करती है, वह 'रात्रि' है। निरुक्तके

* The one who is truly wise, and who uses the forces and powers with which he is endowed, to him the great universe always opens her treasure house. The supply is always equal to the demand,—equal to the demand when the demand is rightly, wisely made. When one comes into the realization of these higher laws, then the fear of want ceases to tyrannise over him"—

In Tune with the Infinite by R. W. Trine, pp, 175—176.

नैघण्टुक काण्डमें कहा गया है,—जो नक्तञ्चर (जो रात्रिमें विचरते हैं, रात्रि जिनका विहारसमय है) भूतोंको प्रकृष्ट रूपसे हर्षयुक्त करती है (रात्रि आनेसे रात्रिचर प्राणिगण 'हमलोगोंका समय आ गया है' जान बड़े हर्षित होते हैं) और जो मनुष्यादि दिवाचर प्राणियोंको इतिकर्त्तव्यता कर्म्मसे निवृत्त करती है, (उनको) स्थिर करती है (रात्रि आने हीसे दिवाचर प्राणिगण कर्म्मसे निवृत्त हो विश्राम लिया करते हैं, रात्रि, दिवाचरोंके आरामका समय है) वह रात्रि है। 'क्षपा' और 'शर्व्वरी'—ये रात्रिके अन्य नाम हैं। निघण्टु-टीकामें 'क्षपा' और 'शर्व्वरी' इन नामोंका इस प्रकार अर्थ लिखा गया है :—"जो दिनमें अपने अपने कर्म्म द्वारा क्षीण—श्रान्त प्राणियोंको स्वाप द्वारा (निद्रित कर) रक्षा करती, वह 'क्षपा' है, और जिसमें—अर्थात् जिस कालमें निद्रित हो, प्राणिगण प्रातः-कालमें पुनः नववत् (अर्थात् श्रान्ति दूर होनेसे पुनः, मानो, नूतनकी नाई) उठा करते हैं, प्राणिगण निद्राके लिये जिनकी शरण लिया करते हैं, वह 'शर्व्वरी' है।*

---

* "रात्रिः कस्मात् ? प्ररमयति भूतानि नक्तञ्चारीण्युपरमयतीतराणि ध्रुवीकरोति।" निरुक्त, नैघण्टुक काण्ड।

"स्वैः स्वैः कर्म्मभिः अहनि क्षीणान् प्राणिनः इयं स्वापेन पातीति 'क्षपा'। अस्यां हि सुप्ताः पुनर्नवा इव प्राणिनः प्रातरुत्तिष्ठान्ति। शरणमस्यां स्वापार्थं व्रियत इति 'शर्व्वरी'।"

—निघण्टुटीका।

वेदमें 'रात्रि' शब्दका प्रयोग।

"रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्यक्षभिः। विश्वा अधि श्रियोऽधित ॥"—ऋग्वेदसंहिता, ८।७।१४।१

वेदमें तथा वेदमूलक, वेदरूपान्तर पुराणादिमें 'जीवरात्रि' और 'ईश्वर-रात्रि'—रात्रि देवताके ये द्विविधरूप वर्णित हैं। "रात्रि" शब्दका उच्चारण करनेसे साधारण लोगोंके चित्तमें जो अर्थ प्रतिभात होता है, अर्थात्, जिसमें अस्मदादि जीवगणके दैनन्दिन (प्रतिदिनके—नित्यके) व्यवहार विलुप्त हुआ करते हैं, वह "जीवरात्रि" है। जिस रात्रिमें ईश्वरव्यवहार भी विलुप्त होता है, वह 'ईश्वररात्रि' है।

महाप्रलयकालमें अन्य वस्तुके अभावके कारण केवल सर्व्वकारण 'अव्यक्त' पदवाच्य ब्रह्म-मायात्मक वस्तु ही विद्यमान रहती है, यही 'ईश्वररात्रि' नामसे कही जाती है। देवी पुराणमें उक्त है—'ब्रह्म-मायात्मिका रात्रि' परमेश्वरकी भी लयात्मिका है। परमेश्वरकी भी लयात्मिका इस रात्रिकी अधिष्ठातृदेवी 'भुवनेशी' नामसे कीर्त्तित होती है। ("ब्रह्ममायात्मिका रात्रिः परमेशलयात्मिका। तदधिष्ठातृदेवी तु भुवनेशी प्रकीर्त्तिता॥"—देवीपुराण)।

जिज्ञासु। दादा! मुझे तो कुछ भी समझमें नहीं आ रहा है, मुझे तो सब अन्धेरा सा ही मालूम हो रहा है। 'परमेश्वरका भी लय होता है' इस बातका अभिप्राय क्या है? क्या तब 'परमेश्वर'

अनित्य हैं ? जिन परमेश्वरका लय होता है उनका स्वरूप क्या है ? सांख्यदर्शनने नित्य ईश्वर नहीं माना है, कहा है, कि 'नित्य ईश्वर' सिद्ध नहीं होते ; क्या यहां पर देवी पुराणने उसी सांख्य मतको अङ्गीकार किया है ? क्या परमेश्वर ब्रह्म-मायात्मक नहीं हैं ? आपके मुखसे सुना है कि 'जीव' माया वा अविद्याके अधीन है, ईश्वर मायाके अधीन नहीं, 'माया' ही ईश्वरके वशीभूत हैं, ईश्वर-के इच्छानुसार 'माया' क्रिया करती है, 'माया' ईश्वर ही की शक्ति हैं। आप यह भी पहले समझा चुके हैं, 'शिव' और 'शिवा' अभिन्न हैं। मैंने इसी लिये कहा, कि मुझे सब अन्धेरा सा ही मालूम हो रहा है।

वक्ता। तुम इसलिये हताश मत होना, समझमें नहीं आ रहा है, इसलिये लज्जित न होना। 'रात्रि' की बात हो रही है, पहले तो ज़रा अन्धेरा सा मालूम होगा ही, पर वेद जिस रात्रिका बात कह रहें हैं, वह रात्रिकी अधिष्ठातृदेवी हैं, उनमें अन्धकारका लेश भी नहीं, वह प्रकाशमयी हैं, वह द्योतनशीला हैं, वह सारी बस्तुको प्रकाश किया करती हैं। तुम धीरभावसे वेदवर्णित रात्रिदेवीका स्वरूप देखनेकी कोशिश करो, उनके चरणोंकी तरफ ताकती रहो, चिन्मयी रात्रिदेवीकी कृपासे तुम्हारा सब अन्धकार शीघ्रही दूर हो जायेगा, भुवनेश्वरीके अनुग्रहसे तुम उनके ज्योतिर्मय रूपके दर्शन कर कृतार्थ होगी। 'परमेश्वरका भी लय होता है' इस बातको सुनकर बहुतेरेहीको अन्धेरा सा मालूम होता है, तुम तो बालिका हो, तुम्हें फिर क्यों न हो ? "नित्य

ईश्वर प्रमाणसे सिद्ध नहीं होते" सांख्यदर्शनकी इस बातका अभिप्राय क्या है, सो मैं तुम्हें दूसरे किसी समय समझाऊंगा। विज्ञानभिक्षुने स्वप्रणीत 'विज्ञानामृत' नामक ब्रह्मसूत्रभाष्यमें कहा है—"केवल जीवात्माका स्वरूपदर्शन होनेहीसे मोक्ष होता है, इसे प्रमाणित करनेके लिये सांख्यदर्शनने अनीश्वर बौद्धमतके अभ्युपगम-(अङ्गीकार) वाद द्वारा प्रतिज्ञात आत्म-अनात्म विवेकका प्रतिपादन किया है, अपने शास्त्रमें (प्रयोजनाभावके कारण) परमेश्वरके स्थापनकी चेष्टा नहीं की है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर व्यतिरिक्त ईश्वरको सिद्ध करना बड़ाही आयाससाध्य है और वह ब्रह्ममीमांसामें किया भी गया है, इसलिये सांख्यदर्शन प्रणेताने ईश्वरप्रतिपादन नहीं किया है।" * 'परमेश्वरका भी लय होता है' इसे सुनकर तुम्हें जो अन्धेरा मालूम होता था, विज्ञानभिक्षुकी इन बातोंसे शायद वह अन्धकार कुछ साफ हो गया होगा।

---

* 'अत्रोच्यते केवलजीवात्मज्ञानादपि मोक्षो भवतीति प्रतिपादयितुं सांख्या अनीश्वरबौद्धमताभ्युपगमवादेन प्रतिज्ञातमात्मानात्मविवेकं प्रतिपादयन्ति, ईश्वरव्यवस्थापनस्य स्वशास्त्रेऽनुपयोगात्। श्रुतिभ्यो ब्रह्मविष्णुशिवातिरिक्तेश्वरसाधने प्रयासबाहुल्यात् ब्रह्ममीमांसयैव तत्साधनस्य कृतत्वाच्च।"

—विज्ञानामृत।

✻ चत्वारो वेदाः सोपनिषदः सेतिहासाः। सर्व्वेते गायत्र्याः प्रवर्त्तन्ते। गायत्रीहृदय। अर्थात्, गायत्रीसे सोपनिषत्, सेतिहास चार वेद उत्पन्न हुए हैं।

'रात्रिसूक्त' बड़ाही गम्भीरार्थक है, इसमें संक्षेपमें विश्वकी सृष्टि, स्थिति और प्रलय-तत्त्व व्याख्यात हैं। वेदमें, उपनिषद्में (उपनिषद् वेदहीका अङ्गविशेष है ; जहां पर 'वेद' और 'उपनिषद्' इन दोनों पदोंका पृथक् उल्लेख देखा जायगा, वहाँ समझना होगा, कि 'वेद' शब्द वेदका मन्त्रभाग, तथा उपनिषद्-व्यतिरिक्त ब्राह्मण भागको बतानेके लिये ही प्रयुक्त हुआ है ('सोपनिषद्, सेतिहास, सपुराण वेद' इस तरहके प्रयोग बहुत स्थानपर देखे जाते हैं)। वेदमूलक स्मृति दर्शन आदि शास्त्रमें, आगममें विश्वकी सृष्टितत्त्व समझानेके लिये जो कुछ कहा गया है, उसका सारांश रात्रिसूक्तमें है। अतः अगर रात्रिसूक्तका अर्थ पूरी तौरसे समझना हो, तो विश्वजगत्को वेदशास्त्रोपदिष्ट सृष्टि स्थिति तथा लयतत्वका संक्षिप्त संवाद जानना चाहिए। मैं इसीलिये तुम्हें पहले विश्वजगत्की सृष्टि स्थिति और लयतत्त्वका संक्षिप्त संवाद बता रहा हूं।

जो वस्तुतः असत् है, जो असलमें है नहीं, वह कभी 'सत्' नहीं होता, जो वास्तवमें हैं नहीं, उसका कभी जन्म नहीं होता। और जो 'सत्' है, जो वस्तुतः है, उसका भी कभी एकबारगी नाश वा ध्वंस नहीं होता। वेदके तथा वेदमूलक शास्त्रोंके इस उपदेशका तात्पर्य्य ग्रहण न कर सकनेसे वेद-शास्त्रोपदिष्ट सृष्टि स्थिति और लयविषयक उपदेशके हृदयको देख न सकोगी। 'नाश और 'लय' इन दो शब्दोंके मूल अर्थ क्या हैं, सो जाननेसे तुम्हें मालूम हो जायेगा कि 'नाश' और 'लय' इन दो शब्दोंके मूल अर्थसे

ही इसका निश्चय हो जाता, कि 'जो सत् है, जो विद्यमान है, उसका एकबारगी ध्वंस नहीं होता, वह बिलकुल असत् हो नहीं जाता'। 'नश' धातुसे नाश पद और 'ली' धातुसे 'लय' पद सिद्ध हुआ है। 'नश' धातुका अर्थ 'अदर्शन' है ; जिसे हमलोग फिर कहीं देख नहीं पाते, उसीको हमलोग ख्याल करते हैं कि वह एकबारगी नष्ट हो गया है। वास्तवमें, विद्यमान वस्तुकी उपलब्धि न होनेके प्रति सूक्ष्मत्वप्राप्ति आदि अनेक कारण हैं। जब कोई मनुष्य मर जाता, तब हमलोग ख्याल करते हैं, कि उसका एकबारगी नाश हो गया है, वह फिर किसी देशमें किसी अवस्थामें है ही नहीं। पर 'नाश' शब्दके यथार्थ अर्थका ज्ञान होनेसे मालूम होगा, कि मृत व्यक्तिका एकबारगी ध्वंस नहीं होता, यह नहीं कि वह किसी स्थानमें किसी भी अवस्थामें विद्यमान नहीं है। मैंने इसीलिये कहा है—"जो सत् हैं, जो वस्तुतः विद्यमान है, उसका कभी एकबारगी नाश नहीं होता, और जो वस्तुतः असत् है, उसका कभी जन्म नहीं होता—इस सत्यका पूर्ण रूपसे अनुभव न होनेसे वेद-शास्त्रोपदिष्ट सृष्टि-स्थिति और लयतत्वका यथार्थ ज्ञान नहीं होगा" 'विसर्ग' वा त्यागार्थक 'सृज्' धातुसे 'क्तिन्' प्रत्यय कर 'सृष्टि' पद, और 'श्लेषण' वा आलिङ्गनार्थक 'ली' धातुसे 'अच्' प्रत्यय कर 'लय' पद सिद्ध हुआ है। अभिव्यक्त होनेको, वर्त्तमान अवस्थामें आगमन करनेको 'उत्पत्ति' और कारणमें लीन होनेको वा अव्यक्तभाव प्राप्त होनेको 'नाश कहते हैं'। ("नाशः कारणलयः।" सां दं, १।१२१)।

कारणके साथ सङ्गत—कारणमें लीन, अविभागापन्न, एकीभूत, अखण्ड तमोभावमें स्थित जगत् किस तरह विभक्त हुआ, किस तरह सृष्टिका आरम्भ हुआ, सो समझानेके लिए ऋग्वेद-संहितामें जो कुछ कहा गया है, सो सुनो ।

सृष्टिके पहले—प्रलयदशामें, नैशतमः (रात्रिका अन्धकार) जिस तरह सब पदार्थोंको आवृत कर रखता है, उसी तरह विश्व-जगत् भी तमः (आत्मतत्वका आवरक 'माया' नामक भावरूप अज्ञान) द्वारा आवृत होकर विद्यमान रहता है ("तम आसीत्तमसा गूढमग्रे प्रकेतं सलिलं सर्व्वमा इदम् ।"—ऋग्वेद संहिता, ८।११।१२६।

भगवान् मनुने भी ठीक यही बात कही है । * कारणके साथ एकीभूत—अविभागापन्न तत्कार्य्यजात (विश्वजगत्) तपके माहात्म्यसे उत्पन्न हुआ है,व्यक्तभावको प्राप्त वा अभिव्यक्त हुआ है । परमेश्वरका पर्य्यालोचनारूप तपः वा ईक्षण ही लयप्राप्त जगत् की पुनरुत्पत्तिका कारण है ("तुच्छेयनाभ्यपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकम्" ऋग्वेदसंहिता, ८।११।१२६)। रमा ! तुम्हारा मुँह देख कर ही मुझे मालूम हो रहा है, कि कुछ भी तुम्हारी समझमें नहीं आ रहा है ।

जिज्ञासु । आपकी कृपा होनेसे कुछ समझ सकूंगी । परमे-

---

* आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणं । अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं प्रसुतिमिव सर्व्वतः ।—मनुसंहिता ।

श्वरकी पर्य्यालोचनारूप तपः वा ईक्षण ही लयप्राप्त जगत्‌की पुनरुत्पत्तिका कारण है" इस बातका अभिप्राय क्या है ?

वक्ता। तपः शब्द शास्त्रमें अनेक अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। परमेश्वरका जो तपः जगत्‌की पुनरुत्पत्तिका कारण बताया गया है, वह स्रष्टव्य पदार्थोंके—जिन पदार्थोंकी सृष्टि करनी होगी उनके पूर्व्वकृत कर्म्मोंकी पर्य्यालोचनारूप तपः हैं, अर्थात्, वह तपः कौन् स्रष्टव्य पदार्थ कैसा कर्म्म कर प्रकृतिगर्भमें निद्रित हुआ है, इसका विचारमूलक है। सर्व्वज्ञ सर्व्ववित् परमेश्वरका तपः ज्ञानमय है। (यः सर्व्वज्ञः सर्व्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः ।"—मुण्डकोपनिषत् १।१।६)। अथर्व्ववेद संहितामें उक्त है—सृष्टिके समय स्रष्टा परमेश्वरका स्रष्टव्यकी पर्य्यालोचनारूप तपः और प्राणियोंसे अनुष्ठित पुण्यपापात्मक सुखदुःखफलोन्मुख परिपक्व कर्म्म ये दो विद्यमान थे, ये ही सृष्टिके कारण हैं "तपश्चैवास्तां कर्म्मचान्तर्महत्यर्णवे"।—अथर्व्ववेद संहिता, ११।१०।२)। सृष्टिके पहले परमेश्वरके मनमें 'काम'—जगत्‌की सृष्टि करनेकी इच्छा उत्पन्न होती है।

जिज्ञासु। परमेश्वरको जगत्‌की सृष्टि करनेकी इच्छा क्यों होती है, दादा? क्या कारण है, कि करुणामयकी दुःखमय जगतकी सृष्टि करनेकी इच्छा होती है ?

वक्ता। कारण यही है, कि जीवगण जगत्‌में आना चाहते हैं, संसार दुःखमय होनेपर भी जीव चिरशान्ति-निकेतन, नित्यसुखमय अमृतधामको छोड़ यहीं आनेकी कामना करते हैं, करुणामय

की बात सुनते नहीं । वेदमें कहा है—प्रलयकालमें जीवोंके वासना-वासित अन्तःकरणसमूह माया वा प्रकृतिमें लीन होते हैं ; प्राणियों-के पूर्व्व कल्पमें किये हुए, अन्तःकरणमें समवेत कर्म्म ही भावि-प्रपञ्चका रेतः (बीज) स्वरूप है । जब ये कर्म्मफलोन्मुख होते हैं तभी सर्व्वकर्म्म-फलप्रद, सर्व्वकर्म्मसाक्षी, कर्म्माध्यक्ष परमेश्वरके मनमें जगत्की सृष्टि करनेकी इच्छा होती है । कल्पान्तरमें जीवों-से किये हुए कर्म्म ही वर्त्तमान सृष्टिके कारण हैं—यह बात 'शब्द' 'श्रुति' वा अलौकिक (अबाधित) प्रत्यक्षसिद्ध हैं ; तोभी श्रुति-ने यहां पर त्रिकालज्ञ विद्वानोंके अनुभवको भी इसके प्रमाण रूपसे ग्रहण किया है । ऋग्वेदमें कहा है—"इदानीं अनुभूयमान (जिन्हें हमलोग इस वक्त जान रहे हैं) अखिल जगत्के हेतुभूत (सारे जगत्के कारणरूप) कल्पान्तरमें जीवोंसे किये हुए कारणलीन कर्म्मोंको, अतीत, अनागत (भविष्यत्) और वर्त्तमान इन तीन कालके जाननेवाले योगिलोग चित्तवृत्तिका निरोध कर—समाधि द्वारा सम्यग्रूपसे (अच्छी तरह) जान सकते हैं । ("कामस्तदग्रे समवर्त्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् । सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥"—ऋग्वेदसंहिता ८।११।१ २६ ।

जिस तरह कुसूलमें (धान्य आदिके बीज रखनेके लिये मृत्तिका निर्म्मित पात्रविशेष) रक्खे हुए धान्य आदिके बीजमें शाखा, काण्ड, पुष्प और फलयुक्त वृक्ष सूक्ष्मरूपसे रहा करता है, उसी तरह: ब्रह्म-मायात्मिका रात्रिदेवी वा भुवनेश्वरीमें यह

विश्वजगत् अव्यक्तरूपसे स्थित रहता। कुसूलमें रक्खे हुए बीज क्षेत्रमें फेंके जानेसे क्रमशः अङ्कुरावस्थाको प्राप्त होते हैं। इस अङ्कुरोन्मुखता रूप अवस्थाको माया वा प्रकृतिकी 'जाग्रत' अवस्था कहते हैं। सांख्यदर्शनमें यह 'महत्तत्व नामसे कहा गया है। वेदके मन्त्रभागमें, उपनिषद्में, वेदान्तदर्शनमें यह अवस्था परमेश्वरका 'तपः','जगत्‌की सृष्टि करनेका काम','ईक्षण' इत्यादि शब्दोंसे लक्षित हुई है। * अचेतना 'प्रधान' वा 'प्रकृति जगत्‌का कारण नहीं है, क्योंकि, श्रुतिमें परमेश्वरकी ईक्षणपूर्व्वक सृष्टिकी बात कही गई है। अतः अचेतन जड़शक्तिसे जगत्‌की सृष्टि हुई है, यह बात 'अशब्द' है, अर्थात् 'शब्द' वा 'वेद' विरुद्ध है ("ईक्षते र्ना शब्दम्।"—वेदान्तदर्शन, १।१।५।५)।

अब रात्रिसूक्तके प्रथम मन्त्रके व्याख्यानका अवसर आ पहुंचा है। 'जो देवी सर्व्वत्र प्रकाशमान तेजः द्वारा सर्व्ववस्तुको प्रद्योतित करती हैं—प्रकाशित करती हैं, जो देवी महत्तत्वादि द्वारा प्रलयकालमें अव्यक्त अवस्थामें रहते हुए विश्वजगत्‌को व्यक्तावस्थामें लाया करती हैं, ब्रह्म मायात्मिका वह रात्रि, वह भुवनेश्वरी, आदिमें—जगत्‌की सृष्टि करनेके पहले स्वोत्पादित ('स्व' अर्थात् अपनेसे सृष्ट) जगत्‌के—स्रष्टव्य सारे पदार्थके सदसत् (शुभाशुभ—पुण्यापुण्यात्मक) कर्म्मादि सम्यग्रूपसे ईक्षण करती हैं, उनकी पर्य्यालोचना करती हैं, प्रलयकालमें

---

* "तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय।"—छान्दोग्योपनिषत्। "स ऐक्षत लोकानुत्सृज" * * *—ऐतरेय आरण्यक।

उनकी सर्व्वाश्रय गोदमें निद्रित—प्रलीन प्राणियोंके बीच किसका कैसा कर्म्म है, कौन् कैसा कर्म्म कर प्रलीन हुआ है, रात्रि देवीकी सर्व्वाधार गोदमें सो गया है,उसे विचारनेत्र द्वारा विशेष कर देखती हैं, उसके वाद प्राणियोंके कर्म्मानुरूप फलस्वरूप विश्वको प्रदान करती हैं—उसकी सृष्टि करती हैं, भगवती रात्रिदेवी—भुवनेश्वरी, जब अपनी गोदमें निद्रित पूर्व्वकल्पके अनन्तजीवोंके अपरिपक्व, सदसत् कर्म्मके फलदानका समय आ पहुंचता हैं, तब महत्तत्वादि द्वारा विश्वप्रपञ्च निर्माण कर उन प्राणियोंके कर्म्मकी पर्य्यालोचना करती हैं, कौन् प्राणी किस तरहका कर्म्म कर लीन हुआ है—उनकी गोदमें सो गया है इसका विचार कर कर्म्मफल प्रदान करती हैं। भगवती रात्रिदेवीकी सर्व्वज्ञता, सर्व्वशक्तिमत्ता किस तरहकी है सो कही नहीं जाती। मैंने इस वक्त जो बातें कहीं, उनमें से कुछ भी तुम्हारी समझमें नही आई होगी।

जिज्ञासु। यह नहीं, कि एकबारगी कुछ भी समझमें नहीं आई, पर, हां, अच्छी तरह समझमें नहीं आई है। विश्वके सृष्टितत्वका विवरण सुविद्वान् पुरुषोंको भी दुर्ब्बोध्य है, तो मैं किस तरह उस दुर्व्वोध्य विषयको सुनते ही पूर्णरूपसे समझ सकूंगी दादा! बहुत दिनोंसे आपके मुखसे इन बातोंको सुन रही हूं, इसलिये ये मेरे समीप बिलकुल अवोध्य नहीं मालूम पड़तीं। अगर मैं यथार्थ जिज्ञासु होती, तो, आपकी कृपासे और भी समझ सकती। मेरा चित्त तो बड़ा ही चञ्चल है ; क्या मैं स्वतः प्रवृत्त हो (आप ही से) आपके पास इन अमृतमयी

बातोंको सुनने आती हूं ? आप कृपा करमुझे बुलाते हैं,इन बातोंको सुनाते हैं, तभी तो मैं इन बातोंको सुन पाती। आपकी दयाका अन्त नहीं है, पर मेरे दुर्भाग्यकी भी सीमा नहीं है ; जानती हूं कि यह शुभदिन, यह संयोग बराबर नहीं रहेगा, पर, जानकर करती क्या हूं ? सर्व्वदा न होनेपर भी बीच-बीचमें बड़ा अनुताप होता है, जब मालूम होता है,कि आपकी अभावरूपिणी घोर तामसी निशा बड़े वेगसे अग्रसर हो रही है, तब मेरा हृदय बड़ा व्याकुल हो उठता है। अगर एक दिन भी यथार्थरूपसे 'शिवरात्रि' व्रत कर सकूं, तो शिवरात्रिकी कृपासे आपका अनुसरण कर सकूंगी, तो आपको छोड़कर इस भीषण मरूभूमिमें रहना न पड़ेगा। करुणामय भृगुदेव ! देखना, कि तुम्हारी बात मिथ्या न हो।

षष्ठ परिच्छेद।

रात्रिसूक्तके अन्यान्य मन्त्रोंकी व्याख्या।

"ओर्वप्रा अमर्त्यानिवतो देव्युद्वतः। ज्योतिषा बाधते तमः ॥"

—ऋग्वेदसंहिता।

वक्ता। रात्रिदेवीका प्रथम कृत्य—प्रथम कार्य्यका वर्णन कर इस मन्त्रद्वारा द्वितीय कृत्यका वर्णन किया गया है।

मन्त्रका अर्थ—अमर्त्या—मरणरहिता—नित्या देवी—देवनशीला चित्शक्ति भुवनेश्वरी रात्रिदेवी विस्तीर्ण अन्तरिक्षको—

सर्व्वप्रपञ्चको, प्रपञ्चगत नीच तरुगुल्मादि तथा उच्च वृक्षादि सारे पदार्थोंको स्व-स्वरूप द्वारा आपूरण करती हैं, विश्वप्रपञ्चको अपने अधिष्ठानरूपमें, अपनेसे अभिन्नरूपसे विद्यमान (रहते हुए) कल्पना करती हैं। जिस तरह नैशतम, सारे पदार्थको आवृत कर रखता (ढक रखता) है, जिस तरह रात्रिमें पदार्थ सब विद्यमान रहनेपर भी अन्धेरा छा जानेके कारण प्रकाशित नहीं होते, उसी तरह प्रलयकालमें भूत-भौतिक सारा जगत् सर्व्वभूतनिवेशनी विश्वजननी रात्रिदेवी द्वारा आच्छादित हो रहता है, उनकी सर्व्वाधार गोदमें उनसे अभिन्नरूपसे विद्यमान रहता। तब किसी जागतिक पदार्थका प्रकाश नहीं रहता ("रात्रीं प्रपद्ये जननीं सर्व्वभूतनिवेशनीं। भद्रां भगवतीं कृष्णां विश्वस्य जगतो निशाम्।"—ऋग्वेदका रात्रिसूक्त परिशिष्ट)। सच है कि प्रलयकालमें निखिल भूत—भौतिक जगत् तमसाच्छन्न १ हो रहता, पर प्रपञ्चगत २ जीवोंके बीच जो वेदोक्त अनुष्ठानपर हैं, वेदोक्त अन्धकारनाशक कर्म्म द्वारा जिनकी चित्त-शुद्धि हुई है, चिच्छक्ति—भुवनेश्वरी—रात्रिदेवी उनके तमः—मूल अज्ञानका स्व-स्वरूप ३ चैतन्य द्वारा नाश किया करती हैं, वेदोक्त अनुष्ठान द्वारा शुद्धचित्त पुरुषगण प्रलयकालमें भी अज्ञानावृत नहीं रहते, वे तब भी जागे रहते हैं। रात्रिमें सारे पदार्थ अन्धकारसे आच्छन्न (ढके) रहते हैं, सब कोई उन्हें देख नहीं सकते, पर

१—तमः अर्थात् अन्धकार (अज्ञान) से आच्छन्न अर्थात् ढका हुआ

२—प्रपञ्च अर्थात् विश्वमें रहनेवाले।

३—जो उनका अपना ('स्व') स्वरूप है, उनका चैतन्य ही स्वरूप है।

ग्रहनक्षत्रमालिनी रात्रिकी कृपासे जो जागरूकशील हैं, जिनके चक्षु एकबारगी ज्योतिर्विहीन नहीं हैं, वे जिस तरह ज्योतिष्क ग्रह-नक्षत्रादिके आलोकसे नैश अन्धकारसे ढकी हुई वस्तुओंको भी देख सकते हैं। उसी तरह वेदोक्त कर्म द्वारा शुद्धचित्त पुरुष-वृन्द प्रलयकालमें भी, विश्वजगत्‌की निशा, संयमिनी चिन्मयी कृष्णा भगवती भुवनेश्वरीकी कृपासे ज्ञानहीन नहीं होते, उनका चित्त प्रकाशशून्य नहीं होता *। प्रयलकालमें वेदोक्त अनुष्ठनशील अतः शुद्धचित्त पुरुषोंका चित्त भगवती चिन्मयी भुवनेश्वरीकी कृपासे प्रकाशशून्य नहीं होता,—इसमें कोई सन्देह नहीं, कि यह बात वर्त्तमान कालमें बहुतेरोंके समीप अर्थशून्य सी; उन्मत्तके प्रलाप सी ही मालूम पड़ेगी। जिन्होंने वैदिक आर्य्या वंशमें जन्म लिया है, जो पूर्व्वजन्मके विशिष्ट संस्कारके कारण आजतक वेदको मानते हैं, सर्व्वज्ञ ऋषियोंसे पूजित वेदकी बात शिरोधार्य्या करते हैं—उनको कह रहा हूं—प्रलयकालमें भी ऋषिलोग जागे रहते हैं, उनके वेदलब्ध ज्ञानका विलोप नहीं होता—यह बात वेदमें, वेदमूलक इतिहासपुराणादिमें, वेदके अङ्गोपाङ्गमें स्पष्टरूपसे बहुशः

"या रात्रिभुवनेश्वरो मा प्रपञ्चगतानां प्राणिनां वेदोक्तानुष्ठानपराणां चित्तशुद्धिमवलोक्य तेषां तमो मूलाज्ञानं ज्योतिषा स्वाकारवृत्तिप्रतिविम्बितस्वस्वरूपचैतन्यज्योतिषा बाधते नाशयति।"—नागोजीभट्ट कृत टीका।

"* तदनन्तरं तत्तमोऽन्धकारं ज्योतिषा ग्रहनक्षत्रादिरूपेण तेजसा बाधते पीड़यति॥'—सायणभाष्य।

कही गयी है। प्रलयकालमें वेद किस अवस्थामें रहते हैं, और वेदका प्रचार किस तरह होता है, सो उपर लिखे हुए वेदमन्त्रसे जाननेमें आता है। प्रजापतिसे गुरुपरम्पराक्रमसे लब्ध 'वेद' विश्वजगत्‌के नित्य इतिहास हैं। अनादिनिधना विद्यारूपा वेदवाणी स्वयम्भू द्वारा शिष्यप्रशिष्यक्रमसे प्रवर्तित होती हैं।

यज्ञेन वाचः पदवीयमायन्तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टां।
तामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा तां सप्तरेभामभिसंनवन्ते॥"

—ऋग्वेदसंहिता १०।६।७१।

अर्थात्, याज्ञिक लोग यज्ञ वा पुण्य कर्म्म द्वारा वेदके 'पदवीय' होकर—वैदिक प्रतिभाविशिष्ठ होकर वेदको मार्ग योग्यता—वेद ग्रहण-सामर्थ्यको प्राप्त होकर, साक्षात्कृतधर्मा निखिलवस्तुतत्वज्ञ अतीन्द्रियदर्शी ऋषियोंके हृदयमें प्रविष्ठ प्रलयकालमें सूक्ष्मरूपसे ऋषियोंके हृदयमें विद्यमान वेदको प्राप्त होते हैं। इस तरह वेदका आहरण कर वे इनका प्रचार करते हैं। महाभारतमें भी उक्त हुआ है, कि महर्षि लोगोंने युगान्तमें अन्तर्हित सेतिहास वेदको स्वयम्भूकर्त्तृक अनुज्ञात और उपदिष्ट होकर तपस्या द्वारा लाभ किया है ("युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः। लेभिरे तपसा पूर्व्वमनुज्ञाता स्वयम्भुवा॥"—महाभारत, शान्तिपर्व्व)। अतः 'प्रलयकालमें शुद्धचित्त पुरुषोंका चित्त प्रकाशशून्य नहीं होता' यह कोई अर्थशून्य बात नहीं है, विना विचारे, उन्मत्तका प्रलाप समझ, हंस कर उड़ा देनेकी बात नहीं है।

"निरुस्वसारमस्कृतोषसं देव्यायती ।
अपेदुहासते तमः ॥"—

ऋग्वेदसंहिता ।

आगमनशीला देवी रात्रि—चिच्छक्ति भुवनेश्वरी प्रकाशरूपा अपनी भगिनी उषा देवी द्वारा तमः—अन्धकार वा अविद्याका नाश करती हैं ।

इस मन्त्रके गर्भमें विश्वकी सृष्टि स्थिति तथा लय-तत्व विद्यमान हैं । इस मन्त्रके तात्पर्य्यका ज्ञान होनेसे मालूम होगा, कि किस तरह अविच्याच्छन्न जीवके हृदयमें ज्ञानसूर्य्यका अविर्भाव होता है । निरुक्तमें 'उषा' शब्दकी 'जो तमः वा अन्धकारको विवासित करती है—नाश करती है,' इस प्रकार निरुक्ति की गयी है ("विवासयति हीयं तमांसि"—निरुक्तटीका) उषाको रात्रिकी भगिनी क्यों कहा गया है ? 'उषा' रात्रिका ही अपर काल है ("उषाः कस्मादुच्छतीति सत्या रात्रेरपरः कालः ।"—निरुक्त) । ऋग्वेदके दूसरे एक मन्त्रमें 'रात्रि' और 'उषा' इन दोनोंका स्वरूप दिखानेके लिये कहा गया है—उषा और रात्रि 'समानबन्धू' हैं इनका बन्धनस्थान समान हैं; आदित्यके अस्तमयके साथ रात्रि बद्ध—संश्लिष्ट हैं । उषा और रात्रि ये दोनों ही अमृत—अमरण-धर्म्मा हैं, ये दोनों कभी नहीं मरते, ये इतरेतर-संश्लिष्ट—एक दूसरेके साथ संयुक्त हैं । उषा अपने प्रकाश द्वारा प्रकाशमाना हैं, रात्रि भी अपने तमोवीर्य बा शक्ति द्वारा प्रद्योतमाना हैं, उषा रात्रिकी और रात्रि उषाकी आत्मदा है (जो जिसका पूर्ववर्ती

होता है वह उसका कारण होता है)। उषा रात्रिकी पूर्ववर्तिनी है और रात्रि उषाकी पूर्व्ववर्त्तिनी हैं, उषाके बाद रात्रिका और रात्रिके बाद उषाका आविर्भाव होता है, उषा और रात्रि सदा पर्यायक्रमसे आवर्तन करती हैं, इनके पर्यायक्रमसे आगमन प्रत्यागमनका—आविर्भावतिरोभावका कभी विराम नहीं होता, इनकी प्रवृत्तिका कभी अन्त नहीं होता। *

जिज्ञासु। ये बातें तो मेरी समझमें कुछ भी नहीं आतीं।

वक्ता। हताश न होना। इसमें सन्देह नहीं, कि ये बातें दुर्व्वोध्य हैं, पर मैं तुम्हारे लिये इन दुर्व्वोध्य बातोंको क्रमशः सुखबोध्य कर दूंगा। तुमने 'माया'—यह शब्द सुना होगा।

जिज्ञासु। यह शब्द तो मेरा सुना हुआ है, पर, माया कौनसी चीज़ हैं, इसका यथार्थ ज्ञान तो मुझे नहीं है। सुना है, कि 'माया' मिथ्या, असत् पदार्थ हैं, फिर यह भी आपके मुखसे सुना हैं, कि माया और प्रकृत्ति एक पदार्थ हैं, इन्द्र वा परमात्मा माया द्वारा विश्वकी सृष्टि, स्थिति और लयका सम्पादन करते हैं। क्या माया 'अज्ञान' है? अगर 'माया' अज्ञान है, तो माया कौनसी चीज

---

* "'समानबन्धू' एते रात्र्युषसौ ; 'समानबन्धने' समानमनयोर्बन्धनम् आदित्यस्येयं ह्यस्तमयं प्रति रात्रिर्बद्धा संश्लिष्टा, उदयं प्रत्युषाः एवं समानबन्धू॥ 'अमृते अमरणधर्म्माणौ' न हि रात्र्युषसौ म्रियेते। ॐ इतरेतरं संश्लिष्टे ह्येते ॐ उषाहि स्वेन प्रकाशेन द्योतते। रात्रिरपि स्वेन तमो वीर्येण नक्षत्रगणेन वा स्वमधिकारं प्रति द्योतते। उषा अपि रात्रेरधि आत्मानं निर्मिमीते, रात्रिरपि उषसः, इतरेतरसंश्लिष्टे हीमे रात्र्युषसौ।"

निरुक्त टीका।

है यह मेरा दुर्ब्बोध्य न होगा, क्योंकि मैं जिनमें हूं, उनसे मेरा बिलकुल परिचय नहीं है, यह किस तरह हो सकता? निविड़ अज्ञानान्धकारमें, घोर तामसी निशाकी गोद्में ही तो दिन-रात मेरा निवास हो रहा है, किसी विषयका तो मेरा ज्ञान नहीं है. कुछ भी तो मेरी समझमें नहीं आता।

वक्ता। तुमने बड़ी ही सुन्दर बात कही। पर जरा सोच कर कहो तो सुने—अगर माया बिलकुल अज्ञान वा असत् पदार्थ होती, तो यह बात किस तरह तुम्हारी समझमें आती, कि दिन रात निविड़ अज्ञानान्धकारमें, घोर: तामशी निशाकी गोद्में तुम्हारा निवास हो रहा है? जो माया केवल अज्ञानरूपा हैं, जो माया बिलकुल ही असत् पदार्थ हैं, क्या वह माया जगत्की सृष्टि, स्थिति तथा लयकार्य्यका सम्पादन कर सकती है? अतः माया केवल अज्ञान नहीं हैं, माया बिलकुल ही असत् पदार्थ नहीं हैं। 'प्रकृति' 'माया' अज्ञान' इत्यादि शब्दोंसे जो पदार्थ कहे जाते हैं, वह पदार्थ अनृत वा मिथ्या नहीं हैं, क्योंकि वह पदार्थ शक्तिरूपा हैं। यह माया ही परमेश्वरकी सृष्टिस्थिति-लयकारिणी शक्ति हैं ("शक्तित्वान्नानृतं वेद्य"।—शाण्डिल्यभक्तिसूत्र)। माया मिथ्या वा सर्व्वथा असत् पदार्थ नहीं हैं—यह बात श्रुति स्मृति, पुराण, तन्त्र आदि निखिल शास्त्र ही ने समझायी है। जो कुछ 'सत्' मालूम होता है, वह सभी असलमें उभयात्मक हैं—शिवशिवात्मक हैं, यह मैं पहिले, शिव और शिवाका स्वरूप दिखानेके समय कह चुका हूं। सत्व,रजः और तमः इन तीन गुणों-

का जो समाहार—साम्यावस्था है, वही 'अव्यक्त' 'प्रधान' 'प्रकृति' इत्यादि नामोंसे लक्षित होती है। गुणत्रयके साम्यके कारण अविशेष—अप्रकाशविशेष, हैं इसलिये प्रकृतिका 'अव्यक्त' नाम पड़ा है। महत्तत्वादि प्रकृतिके जितने कार्य्य हैं, उन सभोंके प्रकृति ही आश्रय हैं, इसलिये प्रकृतिको 'प्रधान'—श्रेष्ठ कहा गया है। प्रकृति सूक्ष्म हैं, नित्य हैं और सदसदात्मक—कार्य्यकारणशक्ति स्वरूपन्न हैं। निरुक्तमें 'माया' शब्द 'प्रज्ञा' नाममालामें धृत हुआ हैं। जिनके द्वारा पदार्थ मित होते हैं—परिच्छिन्न होते हैं, वह माया हैं—निघण्टुटीकामें 'माया' शब्दकी इस तरहकी व्युत्पत्ति दिखायी गयी है।

ऋग्वेदके तृतीय और चतुर्थ अष्टकमें माया शब्द ज्ञान परमेश्वरकी संकल्प शक्ति—अनेकरूपग्रहणसामर्थ्य इस अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। इन्द्र—परमैश्वर्य्यवान् परमेश्वर अपनी माया, ज्ञान वा संकल्पशक्ति द्वारा अनेक रूप धारण करते हैं। * मायाकी विद्या और अविद्या, ये दो वृत्तियां हैं, जिन्हें 'आवरणात्मिका'

---

* "रूपं रूपं मधवा बोभवीति माया कृण्वानस्तन्वं परिस्वाम्।" —ऋ० संहिता २।३।२०।

"** मायाः अनेकरूपग्रहणसामर्थ्योपेताः **" सायणभाष्य।

"रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय। इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ताह्यस्य हरयः शतादश॥" ऋ० सं० ४।७।३३।

"*** अपि चायमिन्द्रो मायाभिः ज्ञाननामैतत् ज्ञानैरात्मीयैः संकल्पैः पुरुरूपो बहुविधशरीरः सन् ** ।"

और 'विक्षेपात्मिका' कहते हैं। अविद्याकी आवरणात्मिका वृत्ति जीवके स्वाभाविक ज्ञानको आवृत करती हैं और विक्षेपात्मिका वृत्ति द्वारा जीवमें अन्यथा ज्ञान—अयथार्थ ज्ञानकी उत्पत्ति कर उसपर जय लाभ करती हुई विद्यमान है। परमेश्वरकी माया नाम्नी शक्ति ज्ञान, इच्छा और क्रियाके भेदसे तीन रूपसे देखी जाती है। 'सीतातत्व' में इस बातकी साफ तौरसे व्याख्या की गयी है। श्रीमद्भागवतके तृतीय स्कन्धके पञ्चम् अध्यायमें उक्त हुआ है—द्रष्टा परमेश्वरकी सदसदात्मिका मायानाम्नी जो शक्ति है, परमेश्वर उनके द्वारा ही इस प्रत्यक्ष परिदृश्यमान विश्वकी सृष्टि किया करते हैं। "सा एतस्य संद्रष्टुः शक्तिः सदसदात्मिका। माया नाम महाभाग ययेदं निर्म्ममे विभुः ॥"—श्रीमद्भागवत)। अतः शिव और शिवा भी एक ही सामग्री हैं। "कालोत्तर" में कहा गया है कि जो सर्वजगत्‌की करुणारससागरा जननी शिवका पूजन नहीं करता, उसका जन्मको धिक्कार है "धिग् धिग् धिग् धिक् च तज्जन्म यो न पूजयते शिवाम्। जननीं सर्व्वजगतः करुणा रससागराम्ः ॥"

रात्रि और उषा ये दोनों एक माया नाम्नी परमेशशक्तिसे ही आविर्भूत हुई हैं, इसलिये वेदने इनको एक दूसरेकी भगिनी बतायी है। जीवरात्रि और ईश्वररात्रि इन द्विविध रात्रिकी बात पहिले कही गयी है। जिस रात्रिमें हम लोगोंको प्रतिदिनके व्यवहार विलुप्त होते हैं, वह जीवरात्रि और महाप्रलयमें, जब अन्य सर्व्व वस्तुका तिरोधान होता है, जब केवल सर्व्वकारण 'अव्यक्त'-

पदवाच्य ब्रह्म-मायात्मक पदार्थ ही विद्यमान रहते हैं तब ईश्वर-व्यवहारका भी विलोप होनेके कारण वह ईश्वररात्रि कहलाती है।* रात्रिसूक्तमें इन द्विविध रात्रिका ही स्वरूप वर्णित हुआ है।

चिच्छक्तिरूपा रात्रिदेवी भुवनेश्वरी प्रकाशरूपा उषाके द्वारा जब अविद्याकी आवरणशक्तिको निराकृत करती हैं, दग्धबीजभाव को प्राप्त कराती है, जब प्रारब्धकर्म्मका क्षय होनेसे विक्षेपशक्तिका भी नाश होता है, तभी अज्ञानरूप तमः अपगत होता है, उसकी निवृत्ति होती है। रात्रिसूक्तके तृतीय मन्त्रका यही भावार्थ है।

"सा नो अद्य यस्यावयं निते यावन्नविक्ष्महि वृक्षेण वसतिं" वयः ॥"

—ऋग्वेद संहिता, रात्रिसूक्त,
४ र्थ मन्त्र।

रात्रि देवता इस कालमें (अद्य) प्रसन्न होवें, हमपर कृपा करें उनके प्रसन्न होने ही से हमलोग सुखसे रह सकेंगे, अर्थात् अपने स्वरूपमें स्थित हो सकेंगे; वे कृपाकर ऐसा करें, कि हमलोग फिर उनके शान्तिमय अंकसे च्युत न होवें, फिर इस दुःखमय संसाररूपी समुद्रमें आ न गिरें, जिस तरह पक्षिगण रात्रिमें

* "*** सा रात्रिदेवता द्वेधा जीवरात्रिरीश्वररात्रिश्च। तत्र आद्या प्रसिद्धा। यस्यामस्मदादीनां जीवानां प्रतिदिनं व्यवहारो लुप्यते। द्वितीया तु यस्यामीश्वरव्यवहारलोपो भवति। महाप्रलयकाले तदानीमन्यवस्त्व-भावात् केवलं ब्रह्ममायात्मकमेव वस्तु सर्वकारणमव्यक्तपदवाच्यं तिष्ठति सा द्वितीया रात्रिः।"

—नागोजी भट्ट कृत टीका

वृक्षपर (जो उनका नीड़ाश्रय—डेरा है) सुखसे निवास करते हैं, हमलोग भी उसी तरह रात्रिदेवी भुवनेश्वरीकी सर्व्व-सुखमय गोदपर सुखसे निवास करें।

"निग्रामासो अविक्षत निषद्धन्तो निपक्षिणः। निश्येनासश्चिदर्थिनः।"

ऋग्वेद संहिता, रात्रिसूक्त, ५ म मन्त्र।

मा ! तुक सर्व्वभूतनिवेशनी हो, तुम करुणामयी विश्वजननी हो, तुम विश्वजगत्की निशा हो, तुम श्रान्त जीवमात्र ही को स्वयं आकर सुखी करती हो, तुम्हारी अनन्त सर्व्वाधार गोदमें लेकर सुलाती हो। ग्रामवासी सभी कोई, चाहे वे पामर हों या अपामर, तुम्हारी गोदमें सुखसे शयन कर रहते हैं, तुम किसीको भी अपनी गोदमें लेनेसे विमुख नहीं होती, पापी भी तुम्हारी करुणासे वञ्चित नहीं होते। रात्रिके आनेसे पाद-युक्त गवाश्वादि तुम्हारी गोदमें आश्रय लेते हैं, पक्षविशिष्ट पक्षिगण तुम्हारी गोदमें आश्रय लेते हैं, कामार्थिपथिकगण तुम्हारी गोदमें आश्रय लेते हैं, शीघ्र जानेवाले श्येनपक्षिगण भी तुम्हारी शरण लेते हैं, अहा ! तुम्हारी ऐसी ही करुणा है, कि जो जीव परमेश्वरीका नाम तक नहीं जानते, वे भी तुम्हारी गोदमें शयन करते हैं, तुम्हारी गोदमें सुखसे निवास करते हैं। जिस तरह अति मूढ़ बालक सन्तानगण करूणाविगलित माताकी गोदमें सुखसे निवास करती हैं, उसी तरह परम करुणामयी विश्वजननी रात्रिदेवी अपनी सर्व्वाश्रय गोदमें सबको सुखसे (रहनेके लिये) आश्रय दिया करती हैं।

"यावया वृक्यं वृकं यवय स्तेनमूर्म्ये ।
अथानः सुतरा भव ॥"
ऋग्वेदसंहिता, रात्रिसूक्त, षष्ठ मन्त्र ॥

हे रात्रे ! तुम बड़ी ही दयावती हो, इसीलिये मा ! तुमसे मैं प्रार्थना कर रहा हूं, नहीं तो, हे मात ! क्या हम तुमसे इस प्रकार प्रार्थना कर सकते, कि तुम हम लोगोंको अपनी चिर शान्तिमय गोदमें स्थान दो, हमलोगोंका संसारार्णवसे उद्धार करो ? हम तुम्हारी पामर सन्तान हैं, तुम यह न देखना, कि हमारो कोई सुकृति है या नहीं, हम पापमलीमस हैं, हम अपराधोंके आलय हैं, तुम हमारी दुर्वासना रूप वृक (आरण्य कुक्कुर) को, तथा वृकवत् मारक पापराशिको हमसे अलग करो, चित्तापहारक कामादि तस्करों को हमसे वियुक्त—दूरीभूत करो और वैसा कर हमलोगोंकी सुखसे भवार्णव तारिणी बनो, अर्थात् हमलोगोंका विना क्लेश भवार्णवसे त्राण करो, हमारी क्षेमङ्करी बनो ; हमारी मोक्षदात्री बनो ।

"उपमा पेपिशत्तमः कृष्णं व्यक्तमस्थित ।
उष ऋणेव यातय ॥"—
ऋग्वेदसंहिता, रात्रिसूक्त, सप्तम मन्त्र ।

हे रात्रे ! हे चिच्छक्ते, भुवनेश्वरि ! हमारे सर्व्ववस्तुमें अक्लिष्ट जो तमः—अज्ञान है, तमःप्राधान्यके कारण जो कृष्णवर्ण है, सर्व्व पदार्थोंका स्वरूपावरक है—जो सर्व्व पदार्थोंके स्वरूपको ढक रखता है, देखना कि फिर वह हमारे समीप आ न पहुंचे; हे उषः—

उषदेवते ! जिस तरह धन दे देनेसे कोई ऋणमुक्त हो जाता है, फिर उसको उत्तमर्णकी करुणाशून्य दृष्टिका सामना न करना पड़ता है, उसी तरह तुम हमारे अज्ञानको हटा दो, फिर जिससे हमलोग अज्ञानकी क्रीड़ाभूमि न बनें, ऐसा करो ।

"उपतेगा इवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः ।
रात्रि स्तोमं न जिग्युषे ॥"

—ऋग्वेदसंहिता, रात्रिसूक्त, ८ म मन्त्र ।

हे रात्रे !—हे भुवनेश्वरि ! मैं पयस्विनी धेनुकी नाई स्तुति जपादि द्वारा तुम्हें अभिमुखिनी करूंगा, हे परमाकाशरूप परमात्मा की पुत्रि ! (सायणाचार्य्यके मतमें द्योतमान सूर्य्यकी पुत्री) तुम्हारी कृपासे मैं कामादि शत्रुगण पर जय लाभ करूंगा, मेरा स्तोम—स्तोत्र तथा यथाशक्ति प्रदत्त हविः को तुम स्वीकार करो

ऋग्वेदके अष्टमाष्टकके सप्तमाध्यायके चतुर्दश वर्गानन्तर पञ्चविंशति ऋगात्मक रात्रिसूक्तके परिशिष्टमें 'रात्रि' शब्दका जिस अर्थमें प्रयोग हुआ है ।

वक्ता । 'शिवरात्रि' कौनसा पदार्थ है, सो समझानेके लिये मैं तुमको 'रात्रि' शब्दका मूल अर्थ क्या है, वेदमें कौनसे अर्थों में इसका प्रयोग हुआ है, सो जता रहा हूं । रात्रिसूक्तमें जिस अर्थमें 'रात्रि' शब्दका प्रयोग हुआ है सो अब अवश्य ही कुछ-कुछ तुम्हारी समझ में आ गया होगा । रात्रिसूक्तमें जिस अर्थमें 'रात्रि' शब्दका प्रयोग

हुआ है, सो जानकर तुम्हारी जैसी धारण हुई है, सो कहो; सुनुं।

जिज्ञासु। विश्वकी सृष्टि और प्रलयके सम्बन्धमें आपके मुखसे पहिले जो कुछ सुना था और इस वक्त जो कुछ सुना, उससे मुझे जैसी धारणा हुई है सो कह रही हूं (मैं नहीं कह सकती, कि यह धारणा दृढ़भूमिक तथा यथार्थ धारणा है, क्योंकि आज तक मेरी आपके मुखसे सुने हुए विश्वकी सृष्टि और प्रलयविषयक उपदेशोंकी यथार्थ; अनुभूति हुई नहीं है, मैं जो कुछ कह रही हूं, सो मेरे ख्यालमें, आपकी ध्वनिकी प्रतिध्वनिमात्र है, और यह प्रतिध्वनि भी ठीक प्रतिध्वनि है या नहीं, सो भी मैं नहीं जानती। विश्वकी सृष्टि और प्रलय प्रवाहरूपसे नित्य हैं, ये अनादिकालसे चल रहे हैं, इनके आदि नहीं, अन्त नहीं। जो असत् है—जो वस्तुतः है नहीं, उसका कभी जन्म नहीं होता, (और) जो सत् है—जो वस्तुतः है, उसका कभी एकवारगी नाश नहीं होता। जगत् पर्य्याय क्रमसे अव्यक्त अवस्थासे व्यक्त अवस्थामें आगमन करता है और व्यक्त अवस्थासे अव्यक्त अवस्थामें गमन करता है। सृष्टि और प्रलयको दिन और रात्रिके साथ तुलित किया जा सकता है, जागरण और निद्रा यथाक्रमसे सृष्टि और लयके दृष्टान्त रूपसे ग्रहण किये जा सकते हैं; सुना है, शास्त्रमें जागरण और निद्रा दैनन्दिन सृष्टि और लय कर बताये गये हैं। रात्रिसूक्तकी व्याख्या सुनकर मुझे धारणा हुई है, कि रात्रिसूक्तने विश्वका सृष्टि-और-लयतत्त्वको ही हमारे परिचित दिन और रात्रिको दृष्टान्तरूपसे ग्रहण कर विशदीकृत किया है।

वक्ता। रात्रिसूक्तका व्याख्या सुनकर तुम्हारी जैसी धारणा हुई है, तुम्हारे लिये यही यथेष्ठ है; मेरे ख्यालमें, रात्रिसूक्त पाठ करके साधारणमें किसीका रात्रिसूक्तके तत्वके बारेमें इससे अधिक ज्ञान नहीं होता। अब वेदसे 'रात्रि शब्दके और दो एक प्रयोग उद्धृत और संक्षेपमें उसकी व्याख्या करता हूं, सुनो।

"आरात्रि पार्थिवं रजः पितरः प्रायुधार्माभिः।
दिवः सदांसि वृहती वितिष्ठस आत्वेषं वर्त्तते तमः॥"

—रातिसूक्त, परिशिष्ट।

हे रात्रि! तुम पृथिवीलोकको अपनी तमः (संहारिणी —प्रलयकारिणी शक्ति) द्वारा आपूरण—आच्छादन करो। पृथिवीलोक ही क्यों, तुम अन्तरिक्षको भी तमः द्वारा आवृत करो। केवल यही नहीं, तुम द्युलोकस्थित सदनोंको (जिनमें द्युलोकवासिलोग निवास करते हैं, उन स्थानोंको) भी तमः द्वारा आच्छादित करो। तुम त्रिलोककी लयकारिणी हो। तुम त्रिलोककी सृष्टिकर्त्री हो, तुम पर्य्यायक्रमसे त्रिलोककी सृष्टि-स्थिति-लय-विधात्री हो। हे विश्वजननि! हे सच्चिदानन्दमयि! हे कल्याणमयि! हे महाभयविनाशिनि! हे महाकारुण्यमयि! हे दुर्गे। मैं तुम्हारो शरण लेता हूं, तुम सर्व्वथा मेरी रक्षा करो, हे संसारार्णवतारिणि! तुम इस भवसागरसे मेरा उद्धार करो; हे मायि! अपनी भवभीत प्रपन्न सन्तानोंको इस भीम भवार्णवसे उद्धार करो; भद्रे! अपने शान्तिमय क्रोड़से फिर मुझे दूर न फेंको।

जो अग्निसमानवर्णा हैं (प्रदीप्त अग्निके वर्णके समान जिनका वर्ण वा रूप है) जो अपने प्रज्वलित तपः—सन्ताप द्वारा मेरे शत्रुओंको दग्ध करती हैं, जो विशेषतः रोचनशील हैं—स्वयं प्रकाशमान परमात्मा द्वारा दृष्ट होनेके कारण ज्योतिर्म्मयी हैं, जो उपासकों द्वारा सदा जुष्ट—सेविता हैं, स्वर्गादि लाभ करनेके लिये भक्तोपासकलोग जिनका नियतरूपसे सेवा किया करते हैं, जो संसारार्णवतारिणी हैं, हम लोग उन ा शरण ले रहे हैं। मायि ! तुम मेरे तमः वा अज्ञानराशिको हटा दो ("रात्रीं प्रपद्ये जननीं सर्व्वभूतनिवेशनीं । भद्रां भगवतीं कृष्णां विश्वस्य जगतो निशाम् ॥" "संवेशिनीं संयमिनीं ग्रहनक्ष मालिनीं ।" "तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्म्मफलेषु जुष्टां । दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये सुतरसि तरसे नमः । सुतरसि तरसे नमः ॥"—रातिसूक्त परिशिष्ट)।

देवी उपनिषद्में जिन देवीको स्तुति है, इसमें सन्देह नहीं, कि वह दुर्गादेवी ही रात्रिदेवी हैं, वह दुर्गादेवी ही रातिसूक्तमें स्तुत हुई हैं ।

सामविधान-ब्राह्मणमें 'रात्र' शब्दका प्रयोग ।

जिनकी यह कामना होगी, कि 'मैं फिर जन्मग्रहण न करूंगा,' इस भव-पारावारमें आनेकी वासना जिनकी मिट गई है, वह पुनर्जननशीला, सर्व्वप्राणियोंकी कल्याणकारिणी, प्रशान्तकेश-कलापान्विता, पाशहस्ता, युवती कुमारी, कन्यारूपिणी रात्रिदेवीकी शरण लें ।

"रात्रिदेवीकी कृपासे चक्षुरिन्द्रियाभिमानी आदित्य देवता मेरे चक्षुरिन्द्रियकी औत्कर्षविधायक हों; वायुदेवता मेरे देहान्तर्व्वर्त्ति पञ्चप्राणकी औत्कर्षविधायक हों;सोमदेवता मेरे गन्धप्रापक इन्द्रियों-की औत्कर्षविधायक हों, जलदेवता मेरे त्वगिन्द्रियकी चाक्‌चिक्य-विधायक (औज्ज्वल्यविधायक) हों (रूक्षता नाश कर उसकी उज्ज्वलता विधान करें), मेरा मन बहुज्ञता लाभ करे, पृथ्वी-देवता मेरे शरीरकी दृढ़ताविधायक हों,—पुनर्जन्मनिरोधके अभिलाषी पुरुष इस तरह रात्रिदेवीकी उपासना करें, उनके पास इस तरह प्रार्थना करें। श्रद्धायुक्त सरल हृदयके साथ इस प्रकारकी प्रार्थना करते रहनेसे महाकारुण्यमयी रात्रिदेवी प्रसन्न होंगी और कहेंगी—"अमुक वत्सरमें, अमुक मासमें, अमुक अयनमें, अमुक ऋतुमें, अमुक पक्षमें अमुक द्वादशाहमें अमुक षड़हमें, अमुक त्रिरात्रमें, अमुक अहोरात्रमें; अमुक दिनमें; अमुक रात्रिमें, अमुक वेलामें, अमुक मुहूर्त्तमें तुम्हारी मृत्यु होगी; स्वर्गको जाओ, देवलोक वा ब्रह्मलोक वा क्षत्रलोक जहां रुचि हो वहीं जा कर रहो, भोगावसान होनेसे पुनर्व्वार आना, यथेच्छ योनिमें प्रवेश करना।" जब वह इस तरह कहेगी, तब उनसे कहना (दयावती श्रुतिका उपदेश है) कि "मा ! जन्मग्रहण करने ही से, तो मरना पड़ेगा, मरने ही से तो फिर देहान्तरके साथ सम्बन्ध होगा; अतः मै फिर ऋतुमती सर्व्वभूतोत्तमा ब्राह्मणकन्या-की योनिमें भी प्रवेश न करूंगा; रात्रिदेवि ! विश्वजननि ! मुझे पवित्र करो ; माई ! अगर मेरे हृदयमें कहीं कुछ कामना गुप्त रहे, तो उसका नाश करो, जननि ! ऐसा करो, जिसमें मैं

सर्व्वथा निष्काम हो सकूं, आप्तकाम और आत्मकाम हो सकूं ; माई ! इस दुःखमय संसारमें किसी अवस्थामें भी फिर आनेकी मुझे इच्छा नहीं है; दुःखानलमें बारम्बार दग्ध विदग्ध हुआ हूं, (अतः) एक बार करुणापूर्ण नेत्रोंसे इस शरणागत सन्तानकी तरफ ताको; एक बार देखो, माई। कि इसका हृदय संसारदावानलमें किस तरह जल भुन गया है। फिर मुझे प्रलोभित न करना माई ! फिर मेरी परीक्षा न करना जननि ! हे रात्रे ! यह जो पुष्पान्त पुरातन (नित्य) आकाश—परमव्योम है, इसीमें मुझे स्थान दो, देखना कि फिर मुझे जन्मग्रहण न करना पड़े; मेरी कामनायें पूर्ण हो गई हैं, माई, अब तुम्हारी शान्तिमयी गोदको छोड़ और कहीं जानेकी इच्छा नहीं है, और किसी भी अवस्थापर मेरा लोभ नहीं है, ब्रह्माका पद भी मैं नहीं चाहता, इन्द्रत्व या वरुणत्व भी मैं नहीं चाहता, पृथ्वीके सम्राट् होनेकी भी इच्छा मुझे नहीं है, जहाँ जानेसे फिर इस उत्तुङ्ग क्लेशतरङ्गमय संसारमें लौटना नहीं पड़ता, माई ! मुझे वहीं ले चलो।" * सरल हृदयसे सर्व्वान्तःकरणसे माके पास इस तरहकी प्रार्थना करनेसे पुनर्ज्जन्मका निरोध होता है, इस तरहकी प्रार्थना ही करुणामयी रात्रि देवीकी उपासना है,इस उपासनामें उपवासादिकी आवश्यकता नहीं है, किसी प्रकारके उपकरणका प्रयोजन नहीं है, इस उपासनाका: निष्कपट हृदयकी प्रार्थना ही एक मात्र उपकरण है।

(*"अथ यः कामयेत पुनर्न्नप्रत्याजायेयमितिरात्रिं प्रपद्ये पुनर्भूम्मयोभूकन्यां शिखण्डिनीं पाशहस्तां युवतिं कुमारिणीमा-

दित्यश्चक्षुषे वातः प्राणाय सोमो गन्धायापः स्नेहाय मनोऽनुज्ञाय पृथिव्यै शरीरं सा हैनमुवाचास्मिन् तसांवत्सरे मरिष्यस्यस्मिन्नयनेऽस्मिन्नृतावस्मिन् मासेऽस्मिन्नर्द्ध मासेऽस्मिन् द्वादशरात्रेऽस्मिन् षड्रात्रेऽस्मिंस्त्रिरात्रेऽस्मिन् द्विरात्रेऽस्मिन्नहोरात्रेऽस्मिन्नहन्यस्यां रात्रावस्याम् वेलायामस्मिन् मुहूर्त्ते मरिष्यस्येहि स्वर्गं लोकं गच्छ देवलोकं वा ब्रह्मलोकं वा क्षत्रलोकं वा विरोचमानस्तिष्ठ विरोचमानामेहि योनिं प्रविश नाहं योनिं प्रवेक्ष्यामि भूतोत्तमाया ब्रह्मणो दुहितुः संरागवस्त्राया जायते म्रियते सन्धीयते च रात्रिस्तु मा पुनातु रात्रिः खमेतत् पुष्पान्तं यत् पुराणमाकाशं,तत्र मे स्थानं कुर्वपुनर्भवायापुनर्जन्मन एतावदेव रात्रौ रात्रेर्वृतश्च रात्रेर्वृतश्च।"

—सामविधान ब्राह्मण)

जिज्ञासु। जो पुनर्जन्मभीरु हैं, फिर जन्म लेना न पड़े, जिनकी ऐसी प्रवल कामना है, वह 'रात्रिदेवीकी कृपासे चक्षुरिन्द्रियाभिमानी देव आदित्य मेरे सम्यग् दर्शनके लिये चक्षुरिन्द्रियके औत्कर्षविधायक हों, वायुदेवता मेरे देहान्तर्व्वर्त्ति पञ्चप्राणके औत्कर्षविधायक हों, सोम देवता मेरे गन्धप्रापक इन्द्रियोंके औत्कर्षविधायक हों, जलदेवता मेरे त्वगिन्द्रियकी रूक्षता नाश कर मेरे शरीरको स्निग्ध करें, रात्रिदेवीकी कृपासे मेरा मन ज्ञानविशिष्ट हो, बहुज्ञताको प्राप्त करे, पृथिवी देवता मेरे शरीरकी दृढ़ता सम्पादन करें,—वह क्यों इस तरहकी प्रार्थना करेंगे, सो मुझे समझा दीजिये।

वक्ता। आगे अच्छी तरह समझा दूंगा, इस समय इसके

सम्बन्धमें संक्षेपमें कुछ कहता हूं। शरीर, इन्द्रिय, प्राण और मन ये अगर स्वच्छन्द न हों, अगर इनकी यथोचित उत्कर्षता न हो, तो मनुष्य कभी अभ्युदय और निःश्रेयसके लिये यथोचित कर्म्म कर नहीं सकता, यथार्थरूपसे वैदिक छान्दस कर्म्म न करनेसे किसीकी किसी प्रकारकी उन्नति हो नहीं सकती, कोई ऐहिक तथा पारत्रिक सुखको प्राप्त नहीं कर सकता, कोई स्थिर तथा पूर्ण कल्याण वा मुक्तिको लाभ नहीं कर सकता। वर्त्तमान कालमें जो उन्नति, उन्नति, (Progress) कर, या सभ्यता, सभ्यता (civilization) कर या क्रमविकाश क्रमविकाश (Evolution) कर चिल्लाया करते हैं, अगर वे यथार्थ मननशील हों, तो यह बात ज़रूर ही उनकी समझमें आवेगी, कि अगर वैदिक वा छान्दस कर्म्म अच्छी तौरसे (अविकल भावसे) किये न जायं, तो मनुष्य इहलोकमें भी स्वास्थ्यसुखको भोग नहीं सकता, दीर्घजीवी हो नहीं सकता, समाजका किसो प्रकार उपकार करनेमें समर्थ नहीं होता, मुक्तिकी बात, पुनर्ज्जन्मनिरोधकी बात तो दूर रहे, (क्योंकि) इस कालमें ऐसे व्यक्ति थोड़े ही मिलेंगे, जो कि इनका प्रयोजन समझते हों। शारीर-विज्ञान, समाजविज्ञान, राजनीति, कर्त्तव्यनीति ये सभी बुद्धिपूर्व्वक हो या अबुद्धिपूर्वक हो, छान्दस कर्म्मतत्वका ही अनुसन्धान किया करते हैं, आत्म-कल्याणप्रार्थी प्रेक्षावान् पुरुष छान्दस कर्म्म करनेकी ही कोशिश किया करते हैं। छान्दस कर्म्म ही वस्तुतः धर्म्म है, यही सर्वप्रकार उन्नतिका मूल है, यथार्थ सुखका निदान है। यदि शरीर दृढ़ न हो, यदि मन

बहुज्ञ न हो, यदि इन्द्रियोंकी शक्ति यथाप्रयोजन संरक्षित तथा प्रवर्द्धित न हो, तो क्या किसीकी उन्नति हो सकती है ? किसीका सुखी होना सम्भव है ? कोई अपना या पराया किसी प्रकार कल्याण साधन करनेमें समर्थ होता है ? शारीर, ऐन्द्रियक, प्राणन और मानस कर्म छन्दानुसार न होनेसे मनुष्यका जीवन अनर्थक हो जाता है। यथार्थरूपसे छान्दस कर्म न करनेके कारण ही मनुष्य रोगप्रवण होते हैं, उनके शरीर दुर्बल होते हैं, उनके चित्त मानवोचित नहीं होते, वे अकृतज्ञ होते हैं, परपीड़क होते हैं, ईश्वरविमुख होते हैं, नास्तिक होते हैं।

जिज्ञासु। छान्दस कर्म किसे कहते हैं ?

वक्ता। छन्दः वेदका एक नाम है, पर मैं इस समय "छान्दस कर्म्म कहनेसे वेदोपदिष्ट कर्म्म समझना होगा" ऐसा न कहूंगा, ऐसा कहनेसे मुझे उपहासास्पद बनना पड़ेगा, बहुतेरे विकृतमस्तिष्क और असभ्य समझ मुझको उपेक्षा वा घृणा करेंगे। इस वक्त ऐसा ही समझ रखो, कि प्राकृतिक नियमोंसे अनुमोदित कर्म्म ही छान्दस कर्म्म है। प्राकृतिक नियमके अनुसार कर्म्म करना ही छान्दस कर्म्म करना है—जब यह बात यथार्थरूपसे समझमें आवेगी, और जब वेद कौनसा पदार्थ है, सो विशुद्ध और पूर्णरूपसे जाननेमें आवेगा, तब चिन्ताशीलको यह सहज ही प्रतीत होगा, कि वेदके अविरुद्धकर्म्म ही छान्दस कर्म हैं। बाद इसके फिर प्रश्न होगा, कि आदित्यादि देवताओंके पास क्यों इस तरह प्रार्थना करनेके लिये कहा गया है ? आलेन्, डारविन्

हर्ब्वर्ट् स्पेन्सर आदि सुधीगणने अर्द्ध सभ्य वैदिक आर्य्यों के अधिष्ठात्रीदेवतावादकी बहुत निन्दा की है, बहुत उपहास, विद्रुप आदि किये हैं। इस सम्बन्धमें कुछ कहनेका यह योग्य अवसर नहीं है। मैंने तुम्हें रात्रि देवीका स्वरूप दिखानेके लिये ये बातें कहीं, अगर इन विषयोंको तुम्हारी यथार्थ जिज्ञासा हो, तो इनके बारेमें तुम्हें यथाप्रयोजन कुछ उपदेश दूंगा। आदित्यादि देवता वास्तवमें हैं, देवताका साक्षात्कार लाभ करनेके लिये विशिष्ट साधना बतलायी गयी है, वेदशास्त्रोपदिष्ट कर्म्म करनेसे देवताका साक्षात्कारलाभ होता है। जिस उपायसे देवताका साक्षात्कारलाभ होता है, वह उपाय वेदमें, पातञ्जलदर्शनमें, पुराणमें, तन्त्रमें स्पष्टरूपसे बता दिया गया है, उस उपायका आश्रय कर बहुतेरोंने देवताका दर्शनलाभ किया है, भाग्यवान् आस्तिक अब भी किया करते हैं। अतः देवता हैं या नहीं, क्या (केवल) शुष्क तर्क द्वारा इस बातकी मीमांसा हो सकती है?

जिज्ञासु। दादा! आपकी कितनी कृपा है;अहा! मुझे विश्वास नहीं है, कि इतनी कृपा और कोई कर सकते हैं। कृतज्ञताभरी हुई अजस्र अश्रुधारासे आपके चरणयुगल धो देनेकी मुझे बड़ी ही इच्छा हो रही है; अहा! क्या इस दानका कोई पर्य्याप्त प्रतिदान है? आपके मुखसे सुना है—"वित्तपूर्ण ससागरा पृथिवीका साम्राज्य भी ब्रह्मज्ञानदाता गुरुदेवका पर्य्याप्त निष्क्रय नहीं है"—आपकी इस बातका मूल्य कितना है, सो आज मुझे कुछ-कुछ मालूम हो रहा है। आज मैं धन्य हुई, आज मैंने कृतकृत्य होनेका मार्ग देखा,

'शिवरात्रि' जो वास्तवमें 'शिवरात्रि' है, सो आज मेरी समझमें आ गया। इतने दिन मैं क्या जानती थी, कि क्यों परम कारुणिक शास्त्र-कारोंने शिवरात्रि व्रतानुष्ठानकी व्यवस्था की है! दादा! अब ऐसी कृपा कीजिये, कि मेरी और कोई कामना न रह जाय, कि जिससे मैं फिर रात्रिमें ज्ञानहीनकी नाईं सो न रहूं, कि जिससे फिर मैं रात्रिको अन्धकारमयी या कृष्णा ख्याल न करूं—कि जिससे रात्रिसे फिर न डरूं। असलमें तो डरनेकी कोई बात नहीं है—क्योंकि माई तो सर्व्वभूतनिवेशनी हैं, माई तो सबके आश्रय हैं, माई तो अन्तर्यामिनी हैं; माईकी जो सन्तान उनसे विमुख हैं, जो संसारासक्त हैं, माई कृपा कर उनका संहार करती हैं, माई उनकी श्रान्त सन्तानोंको स्नेहवश अपनी गोदपर उठा लेती हैं, उनके इन्द्रियादिका निरोध करती हैं, जागतिक दृष्टिमें उनको मार डालती हैं, उनको निश्चेष्ठ, निस्पन्द कर देती हैं, उनको संसार-संज्ञाशून्य कर देती हैं अर्थात् उनके संसार-ज्ञानका विलोप करती हैं। मैं पहिले मृत्युसे बहुत डरती थी, पर अब मैं मृत्युसे न डरूंगी, अब मुझे कुछ-कुछ मालूम हो गया हैं, कि विश्वजननी भगवती रात्रिदेवी कौन हैं। फिर कहता हूं, कि मैं धन्य हुई हूं, कृतकृत्य होनेका, अभय पदपर प्रतिष्ठित होनेका उपाय क्या है सो अब थोड़ा बहुत मेरी समझमें आ गया है, दादा! यह सभी आपकी कृपा हैं। दादा! 'पुष्पान्त' शब्दका अर्थ क्या है?

वक्ता। तुम्हे जो कुछ कहनेको था, सो तो तुमने कहा; अब मेरा जो कुछ वक्तव्य है, जो कुछ मन्तव्य है सो कह रहा हूं, सुनो।

इसमें सन्देह नहीं, कि मेरे पास तुम्हें कृतज्ञ रहना चाहिये, पर, रमा ! एक बार सोचकर देखो कि वास्तवमें किनके अनन्त कृपासागरका, असीम ज्ञानपारावारकी, अपरिच्छिन्न प्रेमसिन्धुका, करुणाविन्दु, ज्ञानकणा, प्रेमशीकर आज तुम्हारे हृदयको आप्या-यित कर रहा है, आलोकित कर रही है, तुम्हें शीतल कर रहा है ? क्या इसके उत्तरमें तुम्हारे मुखसे 'वेदमय शिव-शिवाका सीतारामका, भृगुदेवका,' यही बात न निकलेगी ?

जिज्ञासु । पर, दादा ! मैं भी आपसे पूछूंगी—'भार्गव शिवरामकिङ्करका' यह बात क्यों न निकलेगी ? मैंने तो शिव-शिवाको या सीतारामको या भृगुदेवको देखा नहीं है, ये तो आज तक मेरे परोक्ष ही हैं ; पर, दादा ! आप तो मेरे प्रत्यक्ष देवता हैं, प्रत्यक्ष ज्ञानदाता हैं ।

वक्ता । रमा ! तुम्हारे उत्तरको मैं काट नहीं सकता । इस दृश्यमान जगत्को 'पुष्प' कहते हैं, इस दृश्यमान जगत्का जहांपर अन्त होता है, जो स्थान संसारके अद्धृमें है, वह 'पुष्पान्त' है ।

जिज्ञासु । दृश्यमान जगत्को 'पुष्प' क्यों कहते हैं ?

वक्ता । पुष्पसे फल होता है, फलसे वृक्ष और वृक्षसे फिर पुष्प होता है । संसार वा जगत् इसी तरह प्रवाहरूपसे नित्य है ; जन्म, स्थिति, विपरिणाम, वृद्धि, अपक्षय और नाश, संसार इस छः प्रकारके भावविकारसे सदैव विक्रियमाण है ; जन्मके बाद स्थिति, तिसके बाद बिपरिणाम और वृद्धि, उसके बाद अपक्षय

और विनाश, बाद उसके फिर जन्म, फिर स्थिति, फिर विपरिणाम और वृद्धि, फिर अपक्षय और विनाश, संसार चक्रका इस तरह नियतरूपसे आवर्त्तन हो रहा है। जो यथार्थरूपसे रात्रिदेवीकी यथोक्त उपासना कर सकते हैं, उन्हींके संसारभ्रमणकी निवृत्ति होती है, पुनर्जन्मका निरोध होता है, परिणामक्रमका परिसमाप्ति होती है, वे ही चिरशान्तिमय, चिरस्थिर साम्यावस्थाको प्राप्त होते हैं, कृतकृत्य होते हैं।

जिज्ञासु। दादा! अब जो 'शिवरात्रि'-व्रत मैं हर साल किया करता हूं, जिस शिवरात्रि-व्रत करनेका दिन समीप आ गया है सोचनेसे हृदय अनिर्व्वचनीय आनन्द और उत्साहसे भर जाता है, जिस शिवरात्रिकी तत्वजिज्ञासु होकर, जिस तरह कोई नष्टकपर्द्दक (जिसकी कोई कौड़ी खो गयी है) व्यक्ति उसकी खोई हुई कौड़ीकी खोजमें प्रवृत्त होकर स्पर्शमणिको प्राप्त होता है, उसी तरह मैं अमूल्य ज्ञान-स्पर्शमणिको लाभ कर रही हूं, वह 'शिवरात्रि कौनसा पदार्थ हैं, किसलिये निर्द्दिष्ट कृष्ण-चतुर्द्दशीमें इस व्रतका विधान किया गया है सो समझा दीजये, शिवरात्रिमें रात्रि-जागरण और उपवास की विधि क्यों हुई है सो बता दीजये।

सप्तम परिच्छेद ।

'शिवरात्रि' का 'शिवरात्रि'—यह नाम क्यों पड़ा है ? 'शिवरात्रि'—इस शब्दका अर्थविचार ।

वक्ता । "शिवरात्रिका 'शिवरात्रि' यह नाम क्यों पड़ा है ?" "किस लिये निर्द्दिष्ट कृष्णचतुर्द्दशी तिथिपर 'शिवरात्रि' व्रतका विधान किया गया है ?" अब तुम्हारे इन प्रश्नोंके उत्तर दूंगा ।

मैंने तुमसे पहले कहा है—"जो 'शिवा' हैं वही 'शिव' हैं, जो 'शिव' हैं वही 'रात्रि' हैं, वही भुवनेश्वरी हैं; जब तुम्हें 'रात्रि' किसे कहते हैं, समझाऊंगा, तब तुम 'शिवरात्रि' कौनसा पदार्थ है, शास्त्रमें शिवरात्रिकी क्यों इतनी प्रशंसा की गयी है, उसे जान कर कृतकृत्य होगी; अगर 'शिव' कौन् हैं, 'रात्रि' कौन्सा पदार्थ है, सम्यग् रूपसे इसे समझ कर एक भी शिवरात्रिमें शिवका—शिवयुक्त शिवाका पूजन करो, तो तुम्हारा जन्म सफल होगा, तुम कृतार्थ होगी ।" मेरी इन बातोंको सुनकर

तुम कितनी ही आशान्वित होकर 'शिवरात्रि'का स्वरूप क्या है सो जाननेके लिये कालप्रतीक्षा कर रही हो। जिसके हृदयमें विन्दुमात्र भी आस्तिकता है, अगर वह ऐसी बात सुने, तो क्या वह 'शिवरात्रि' क्या है, इसे जाननेके लिये कौतुहली हुए विना रह सकता? तैत्तिरीय ब्राह्मणने आशाको 'सत्या' और 'अनृता' इन दो भागोंमें विभक्त किया है। जो आशा कभी फलवती नहीं होती, जो 'आशा' आशा रूपसे ही रह जाती, वह अनृता वा मिथ्या आशा है; जो आशा फलवती होती है, वह सत्या आशा है। आज न हो, पर कालान्तरमें मैं ज़रूर ही इसे पाऊंगा, मेरा यह काम अवश्य सिद्ध होगा, इस प्रकार दृढ़ विश्वासके साथ जो काल प्रतीक्षा करते हैं, समझना होगा, कि उनके हृदयमें सत्या आशाने स्थान लाभ किया है। रमा! 'शिव' कौन् हैं, रात्रि' कौन्सा पदार्थ है, इसे सम्यग् रूपसे समझ कर अगर एक भी शिवरात्रिमें शिवका—शिवयुक्त शिवाका पूजन करो, तो तुम्हारा जन्म सार्थक होगा, तुम कृतार्थ होगो" मेरी इन बातोंको सुन कर तुम कितनी आशान्वित होकर कालकी प्रतीक्षा कर रही हो सो मुझे मालूम हो रहा है, मैंने तुम्हें मिथ्या आशा देकर धोखा नहीं दिया है। मैंने तुम्हें अपने विश्वासानुरूप ही बात कही है। मुझे दृढ़ विश्वास है, कि मैंने तुमसे जो कुछ कहा है, वह मिथ्या नहीं है, वह अतिशयोक्ति नहीं है, वह प्ररोचन वाक्य नहीं है। मुझे इस प्रकार दृढ़ विश्वास होनेका कारण क्या है? शास्त्र और गुरुदेवकी कृपा ही इसका प्रधान कारण है। बहुतेरोंने ही तो शास्त्र पढ़ा है और

पढ़ भी रहे हैं, बहुतेरे शास्त्र पढ़ाया भी करते हैं, पर क्या उनमेंसे सभीके हृदयमें यह विश्वास इतने दृढ़ रूपसे स्थान लाभ किया है ? इसके उत्तरमें कहना ही पड़ेगा, 'नहीं' । शास्त्र पढ़नेसे क्या होगा ? मति शास्त्र-संस्कृत न होनेसे शास्त्रपाठ ईप्सित फलदान करनेमें समर्थ नहीं होता । एक बात और है । विद्या, अगर सिद्ध गुरु-देवके पाससे प्राप्त न हुई हो, तो वह अभीष्ट फलको दे नहीं सकती । मेरी अनेक पूर्व्वसुकृतिके कारण मैंने उन गुरूदेवकी कृपा पायी थी, जो कि नररूपमें विरूपाक्ष थे । उनके अमोघ आशीर्वचनने ही मेरे हृदयमें वेदशास्त्रपर श्रद्धा उत्पादन की हैं । उस श्रद्धाकी प्रेरणा ही से मैंने तुम्हें वैसी आशाप्रद बातें सुनाई है । विश्वास करना, कि श्रद्धा ही सर्व्वप्रकार सिद्धिका कारण हैं, यथार्थ श्रद्धाका उदय होने हीसे मनुष्य कृतकृत्य होता है । अगर मेरी बात पर तुम्हारी श्रद्धा रही, तो आगे चलकर तुम्हें इस बातका अनुभव हो जायगा, कि मैंने तुम्हें मिथ्या आशा नहीं दी है । वेदने कहा है—'प्रजापतिने सत्यपर श्रद्धाका और अनृत वा मिथ्या पर अश्रद्धाका आसन दिया हैं' । जाने दो इन बातोंको; अब प्रस्तावित विषयका अनुसरण करूंगा, अब मैंने तुम्हारे सरल तथा कोमल हृदयमें जिस आशाका सञ्चार किया है, जिससे वह मिथ्या न ठहरे इसलिये शिवयुक्त शिवाके पास सर्व्वान्तःकरणसे प्रार्थना कर तुम्हे 'शिवरात्रिका' स्वरूप दिखानेकी कोशिश करूंगा ।

'शिवप्रिया रात्रि-शिवरात्रि' अथवा 'शिवकी रात्रि-शिवरात्रि' 'शिवरात्रि' पदके इस प्रकारके अर्थासे यह समझमें नहीं आता कि

यह किस तरह माघ वा फाल्गुन मासकी कृष्णचतुर्दशीमें अनुष्ठेय व्रतका बोधक होता है। माधवाचार्य्यने इसलिये स्वप्रणीत 'कालमाधव' नामक ग्रन्थमें 'शिवरात्रि' शब्दको 'योगरूढ़' बताया है। 'पङ्कज' शब्द जिस कारण पद्मका बोधक होता है, पङ्कसे पद्मको छोड़ और भी वस्तुएं उपजने पर भी जिस कारण (अर्थात् 'रूढ़ि' शक्ति द्वारा) वह पद्मकाही बोधक होता है, उसी कारणसे 'शिवरात्रि' पद माघ-फाल्गुनमासकी कृष्णचतुर्दशी तिथिमें अनुष्ठेय व्रतका बोधक होता है। रमा! शायद इन बातोंका अभिप्राय अच्छी तरह तुम्हारी समझमें नहीं आ रहा हैं। ये दुर्बोध्य बात नहीं हैं। कोई शब्द उच्चारित होनेसे, जिससे उसके अर्थका ज्ञान होता है, उसे शब्दकी शक्ति कहते हैं। शब्दकी अर्थबोधक शक्तिको 'योग' 'रूढ़ि' और 'योगरूढ़ि' इन तीन भागोंमें विभक्त किया गया है। शब्दकी अर्थबोधक शक्ति तीन प्रकारकी हैं, इसलिये शब्दोंके भी 'यौगिक' 'रूढ़' और 'योगरूढ़' ये तीन भाग किये जाते हैं। जो पाक करते हैं, उन्हें पाचक कहते हैं। 'पाचक' शब्द किस लिये जो पाक करते हैं, उनका बोधक होता है सो अनायास ही समझमें आता है, पर 'पङ्कसे होता है' इस अर्थसे किस लिये जो पङ्कसे होते हैं ऐसे और वस्तुओंका बोधक न होकर, पङ्कज शब्द केवल पद्म ही का बोधक होता है—जब हमलोग यह बात जानने चलते हैं (जब इस पर विचार करते हैं) तब प्रतीत होता है, कि 'जो पङ्कसे होता है' यह अर्थ और किसी शक्ति द्वारा नियामित होता है, इसी लिये पङ्कज शब्द पङ्कसे होनेवाले अन्यान्य वस्तुओंका बोधक न

होकर केवल पद्महीका बोधक होता है। शब्दकी जो शक्ति यौगिक अर्थको नियामित करती है, विशेषित करती है, उसे योगरूढ़ि' कहते हैं। शिवकी रात्रि-'शिवरात्रि' अथवा शिवप्रिया रात्रि-शिव-रात्रि' यही 'शिवरात्रि' शब्दका 'योग' शक्तिबोध्य अर्थ है, 'रूढ़ि' शक्ति इस अर्थको विशेषित कर रही है, रूढ़ि शक्ति बोधन करा रही है, कि माघ-फाल्गुनकी कृष्णचतुर्दशीमें उपवास, रात्रिजागरण आदि नियम पालन पूर्व्वक जो शिवजीका पूजन किया जाता है, वह व्रत 'शिवरात्रि' शब्दका अर्थ है। 'शिवकी रात्रि-शिवरात्रि' 'योग' शक्ति द्वारा यह अर्थ जाननेमें आता हैं, रूढ़ि शक्ति द्वारा यह माघकृष्णचतुर्दशी रूप कालविशेषमें नियामित होता है "तत्र शिवस्य रात्रिरिति तत्पुरुषसमासेन योगेन वर्त्तमानशब्दो रूढ्या माघकृष्णचतुर्दशी रूपे कालविशेषे नियम्यते—कालमाधव)। माधवाचार्य्यने स्वप्रणीत 'कालमाधव' नामक ग्रन्थमें बहुत विचारकर अन्तमें सिद्धान्त किया है कि 'शिवरात्रि' शब्द योगरूढ़ है। शिवजीकी प्रिया रात्रि जिस व्रतमें अङ्ग रूपसे विहित हुई है, उस व्रतको 'शिवरात्रि' कहते हैं (" शिवस्य प्रिया रात्रिर्यस्मिन् व्रते अङ्गत्वेन विहिता तद् व्रतम् शिवरात्र्याख्यम्। तस्मात् निर्मन्थ्यन्यायेनात्र योगरूढ़ः शिवरात्रि शब्दः।"—कालमाधव)।

'शिवरात्रि' व्रतकी प्रशंसा।

शिवरात्रि व्रतकी पुराणादि शास्त्रमें बहुत प्रशंसा देखी जाती है। स्कन्द पुराणमें कहा गया है—'परसे परतर कुछ रह नहीं

सकता, शिवरात्रि परात्पर हैं ; जो जीव इस शिवरात्रिमें त्रिभुवनेश्वर रुद्रदेवका भक्तिपूर्व्वक पूजन नहीं करता, वह अवश्य सहस्र जन्म घूमता रहता है ["परात् परतरं नास्ति शिवरात्रि परात्परम्। न पूजयति भक्त्येषं रुद्रं त्रिभुवनेश्वरम्। जन्तुर्जन्म सहस्रेषु भ्रमते नात्र संशय. ॥"—स्कन्द पुराण)। कदाचित् सागर भी शुष्क हो जाँय, हिमालय भी क्षयप्राप्त होवें, मेरु मन्दरादि पर्व्वत भी विचलित होवें पर निश्चल 'शिवव्रत' कभी विचलित हो नहीं सकता ["सागरो यदि शुष्येत क्षीयेत हिमवानपि मेरुमन्दरशैलाश्च श्रीशैलो विन्ध्य एव च चलन्त्येते कदाचिद्वै निश्चलं हि शिवव्रतम् ॥—स्कन्दपुराण]। जो शिवचतुर्दशीमें शिवजीका पूजन कर जागा रहता है, उसको फिर कभी माताका स्तन्यपान करना नहीं पड़ता ["शिवं पूजयित्वा यो जागर्त्ति च चतुर्द्दशीम्। मातुः पयोधररसं न पिबेत् स कदाचन ॥"—स्कन्दपुराण]। जो मुमुक्षु हैं, अतः जिनका दूसरी कोई कामना नहीं, शिवरात्रि व्रत करनेसे वह अपने 'ईप्सित मोक्षको लाभ करते हैं, जो किसी कामना पूर्व्वक इस व्रतका अनुष्ठान करते हैं, उनकी कामना भी इसके द्वारा चरितार्थ होती है ; 'शिवरात्रि' व्रत सब पापोंका नाश करनेवाला है, यह आचण्डाल मनुष्यको भक्ति तथा मुक्ति देनेवाला है। इस व्रतमें सभीका अधिकार है ; वैष्णव, शाक्त, गाणपत्य, सौर—सब किसीको यह व्रत करना चाहिये। जो शिवरात्रिव्रतवहिर्मुख हैं—जो इस व्रतको नहीं करते, वह अन्य देवताका पूजन करके भी फल नहीं

पाते ["शिवरात्रि व्रतं नाम सर्व्वपाप प्रणाशनम् । आचण्डाल मनुष्याणां भुक्तिमुक्ति प्रदायकम् ॥"—ईशान संहिता। "सौरो वा वैष्णवो वान्यो देवतान्तरपूजकः । न पूजाफलमाप्नोति शिवरात्रिबहिर्मुखः ।—नृसिंहपरिचर्य्या और पद्मपुराण)।

शिवरात्रिव्रतकी इस तरहकी प्रशंसा सुनकर क्या तुम्हें कुछ पूछनेकी इच्छा हो रही है, रमा ?

जिज्ञासु। बहुतसी बातें जाननेकी इच्छा हो रही है, दादा !

वक्ता। कौनसी बातें जाननेकी इच्छा हो रही है ?

जिज्ञासु। 'शिव' और 'रात्रि' इन दो शब्दोंके स्वरूपके सम्बन्धमें जो कुछ सुना है, उससे मुझे मालूम हो गया है कि 'शिवरात्रि' की इस प्रकारकी प्रशंसामें कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं है। जो शिव विश्वके ईश्वर हैं, जो शिव सर्व्वकार्य्यके परम कारण हैं, जो शिव यथार्थ माता-पिता हैं, जो शिव सर्व्वभावमय हैं, जिन प्रेममय शिवकी प्रेमकणा पाकर जगत् कुछ परिमाणसे प्रेमविशिष्ट हुआ है,—एक बातमें कहा जाय, तो जोही जगत्के सब कुछ हैं, उनकी पूजा करनेसे, यथार्थ रूपसे उनपर भक्ति करनेसे, उनका प्रपन्न होनेसे, सदा उनका ध्यान करनेसे, ऐसी कौनसी चीज है, जिसे मनुष्य पा नहीं सकता ? और जो रात्रि वा शिवा हैं, जो भुवनेश्वरी हैं, उनके स्वरूपका जो आभास मुझे मिला है, रात्रिसूक्तमें उनका जो रूप दिखाया गया है, उससे मेरा भी हृदय आनन्दसे भर गया है ; मैं निर्भय हो गयी हूं, अब मुझे ऐसा ही ख्याल हो रहा है—कि माँ उनकी सब सन्तानोंकी

सदा अपनी गोदपर रक्खी हुई हैं—कि मैं माताका करुणापूर्ण सहास्य वदन सदा ही देख रहीं हूं, जिस तरफ ताकूं मानो उसी तरफ मेरी परम करुणामयी सर्व्वदुःखनिवारिणी माँ मुझे देखने में आती हैं। अहा ! क्या विना इन माँकी पूजा किये हुए, विना सदा इन माँका ध्यान किये हुए, बिना इन माँके चरणोंमें प्रपन्न हुए कभी रहा जा सकता है ?

वक्ता। तुम्हारी बात यथार्थ है। अब 'शिवरत्रि' व्रतकी प्रशंसा सुनकर तुम्हारी किन विषयोंकी जिज्ञासा हुई है, सो कहो।

जिज्ञासु। मुझे इन बातोंकी जिज्ञासा हुई हैं :—

'शिवकी रात्रि—शिवरात्रि, अथवा 'शिवप्रिया रात्रि-शिव-रात्रि' शिवरात्रिके इस प्रकार अर्थसे क्यों यह माघ-फाल्गुनकी कृष्ण चतुर्द्दशी तिथि पर अनुष्ठेय व्रतविशेषका वाचक होता है ? माघ फाल्गुनकी कृष्णा चतुर्द्दशीमें उपवास, रात्रि-जागरण और शिव पूजन करनेसे क्यों सर्व्वकामना चरितार्थ होंती हैं, क्यौं मुमुक्षु मुक्तिलाभ करते हैं ? सुना है कि कोंई व्याधा न जानते हुए भी उक्त शिवचतुर्द्दशी पर,बाध्य (परवश) होकर जागरण और उपवास करनेके कारण निष्पाप हो गया था, गणत्वको प्राप्त हुआ था। यह सुनकर प्रवल जिज्ञासा हुई है:—इस तिथिका इतना माहात्म्य होनेका कारण क्या है ? माघ-फाल्गुन मासकी कृष्णाचतुर्द्दशी की रात्रि शिवजीकी इतनी प्रिय होनेका कारण क्या है ? शिवरात्रि का स्वरूप दिखानेके लिये आपने ऋग्वेद तथा सामविधान ब्राह्मण से 'रात्रि' शब्दका जो अर्थ बताया, मैं नहीं समझती कि 'शिव-

प्रिया रात्रि—शिवरात्रि' यहांपर उसी अर्थमें 'रात्रि' शब्दका प्रयोग हुआ है, मेरे ख्यालमें यहांपर साधारणका परिचित रात्रि शब्द ही लिया गया है। क्या यहांपर 'रात्रि शब्द चित्-शक्ति, सर्व्वाधार भूता 'शिवा' वा भुवनेश्वरीका वाचकरूपसे प्रयुक्त हुआ है? रात्रिसूक्तकी व्याख्या सुनकर 'रात्रि' कहनेसे मैं जिनको समझी थी, मेरे ख्यालमें, 'शिवप्रिया रात्रि—'शिवरात्रि' यहाँपर उस अर्थमें 'रात्रि' पदका प्रयोग नहीं हुआ है। रात्रिसूक्तमें रात्रिदेवीका जो रूप वर्णित हुआ है, वह रूप कितना ही मनोहर है, कितना ही आशाप्रद है, उस रूपका ध्यान करनेसे मन; प्राण, इन्द्रियगण अपने ही से सब कुछ बिसरकर, किसी तरफ़ न ताक कर उन्हींमें मग्न हो जाते हैं। पर शिवप्रिया रात्रि=शिवरात्रि, 'रात्रि' शब्दका यह अर्थ मेरी परमकरुणामयी संसारार्णवतारिणी, अग्निवर्णा दुर्गा देवीकी याद नहीं दिला देता है, मांकी शान्तिमयी अभया मूर्त्ति हृदयपर प्रतिफलित नहीं करता। मैं स्वल्पमति हूं, मुझे यह बात समझा दीजिये; ऋग्वेदने जिस रात्रिको सर्व्वभूतनिवेशनी बतायी है, विश्वजननी बतायी है; मङ्गलमयी बतायी है, जिनको एकमात्र शरण्या बतायी है, सर्वप्रकार भयनिवारिणी बतायी है, जिनकी शरण लेनेसे अपराधका आलय भी निष्पाप होता है, ऐसी बात कही है. शिवप्रिया रात्रि=शिवरात्रि' शिवरात्रिका यह अर्थ सुनकर मैं तो मेरी उन मांको देख नहीं पाती। रात्रिसूक्तमें वर्णित माँका रूपने मेरा भी मृत्युभय घटाया था, पर इस रात्रिका रूप तो परिचित

अन्धकारमयी रजनीका भीषण रूप ही आँखोंके सामने धारण कर रहा है। अगर शिवरात्रि लोगोंकी परिचित रात्रि ही हैं, तो आपने फिर वेदसे रात्रिका उस परम कमनीय रूप दिखानेके लिये इतना श्रम क्यों किया ? सामविधान ब्राह्मणने पुनर्जन्म-भीरुओंको जिन रात्रिदेवीको उपासना करनेको कही हैं, क्या वह रात्रि साधारणतः परिचित रात्रि हैं ? क्या साधारणतः परिचित रात्रि जन्मनिरोध कर सकती हैं ? भक्तको दर्शन दे सकती है ? शब्द बोल सकती हैं ?

वक्ता। रात्रिसूक्तके परिशिष्टमें रात्रिका जो रूप वर्णित हुआ हैं, पूर्णरूपसे उसका ज्ञान होनेसे जाननेमें आता है कि रात्रिको नवसंख्यक नवति (९×९०) आवरक असुर वा राक्षस युक्ता भी कहा गया है, ("ये ते रात्री नृचक्षसो युक्तासो नवति-नंव।"—रात्रिसूक्त परिशिष्ट)। ऋग्वेद और सामवेदमें कहा गया है कि इन्द्रने दधीच मुनिके अस्थिनिर्मित अस्त्र द्वारा वृत्रासुरका नवसंख्यक नवति (९×९०) असुरोंका विनाश किया था (दुर्गा और दुर्गार्च्चनतत्वमें मैंने यह बात कही है)। (और) रात्रिसूक्तके परिशिष्टमें भी रात्रिदेवीको नवसंख्यक नवति नरभक्षक, जीवके ज्ञानावरक राक्षस वा असुरोंसे युक्त बताया गया है। रात्रि-सूक्तमें जिन रात्रि देवीको जीवकी एकमात्र शरण्या कहा गया है, सर्व्वदुर्गतिनाशिनी दुर्गा कहा गया है, महाकारुण्यमयी, चिन्मयी, भीमभवार्णवतारिणी कहा गया है, उन्हीं रात्रिदेवीको नवसंख्यक नवति राक्षसयुक्ता भी कहा गयी है। षड्विंशब्राह्मण

पाठ करनेसे जाननेमें आता है, रात्रिमें असुरोंकी प्रवलता होती है, रात्रि अज्ञानान्धकारका आवरणात्मिका शक्तिका वाचक है।* पुराणमें लिखा है महानिशान्विता माघमासकी कृष्णा चतुर्द्दशीमें शिवरात्रि व्रत करना चाहिये (महानिशान्वितायां तु तत्र कुर्यादिदं व्रतम्")। यथोक्त कृष्णाचतुर्द्दशोकी रात्रिमें क्यों यह व्रत करना चाहिये इसे समझानेके लिए स्कन्दपुराणने कहा हैं, रात्रिमें (विशेषकर कृष्णपक्षीय चतुर्द्दशोकी रात्रिमें) भूतपिशाचादि, देवीगण और शूलभृत् शङ्कर, ये विचरण करते हैं, अतः चतुर्द्दशो रहते ही रात्रिमें शिवरात्रि व्रत करना चाहिये (निशि भ्रमन्ति भूतानि शक्तयः शूलभृद्यतः। अतस्तस्यां चतुर्द्दश्यां सत्यां तत्पूजनं भवेत्।—स्कन्दपुराण)। शङ्करने स्वयं हो कहा है—"कलिमें मैं माघ मासकी कृष्णा चतुर्द्दशीकी रात्रिमें भूपृष्ठपर गमन करूँगा, दिनको न जाऊंगा ('माघमासस्य कृष्णायां चतुर्द्दश्यां सुरेश्वर। अहं यास्यामि भूपृष्ठे रात्रौ नैव दिवाकलौ।'—नागरखण्ड, स्कन्दपुराण); इस तिथिकी रात्रिमें वर्ष भरके सञ्चित पापोंकी विशुद्धिके लिये मैं स्थावर, जङ्गम सब लिङ्गोंमें संक्रमण करता हूँ, जङ्गम-स्थावर अखिल लिङ्गमें मेरी शक्तिका आवेश होता है। अतः मनुष्य इस रात्रिमें मेरा पूजन करे, चतुर्द्दशीको रात्रिमें जो मनुष्य मेरा पूजन करेगा, वह अवश्य निष्पाप हो जायगा ("लिङ्गेषु च समस्तेषु चलेषु

*'यद्दिवा देवानसृजत तद्देवानां देवत्वं यदसूर्य्यं तदसुराणां असुरत्वं —षड्वंश ब्राह्मण।

स्थावरेषु च। संक्रमिष्याम्यसन्दिग्धं वर्षपापविशुद्धये ॥ तस्माद्रात्रौ हिमे पूजां यः करिष्यति मानवः। मन्त्रैरेतैः सुरश्रेष्ठ विपाप्मा स भविष्यति ॥"—नागरखण्ड; स्कन्दपुराण)।

किस लिये माघ-फाल्गुनकी कृष्णा चतुर्दशीकी रात्रिमें शिवजीका पूजन करनेसे विशेष फल मिलता है, सो स्कन्द पुराणसे तुम्हें सुनाया। रात्रिमें भूतादिका आविर्भाव होता है, रात्रि असुरोंका प्रबल होनेका समय है, वेदमें भी यह बात है—तुमने यह भी सुना। अब तुम क्या पूछना चाहती हो, सो कहो।

जिज्ञासु। इसमें सन्देह नहीं, कि स्कन्दपुराणको यह बात सुनकर, शास्त्रश्रद्धावान्को, अतः भाग्यवान्को 'शिवरात्रि-व्रत क्यों माघ-फाल्गुनकी कृष्णाचतुर्दशीकी रात्रिमें करना चाहिये?' ऐसी जिज्ञासाकी निवृत्ति होगी।

वक्ता। तुम्हारी इस विषयकी जिज्ञासा निवृत्त हुई है या नहीं, सो कहो।

जिज्ञासु। मैं तो कुछ भी नहीं जानती, मैं फिर क्या कहूंगी। पर यह मुझे मानना ही पड़ेगा, कि इसे सुनकर भी मेरी जिज्ञासा पूर्णतया निवृत्त नहीं हुई है। अल्पमतिको समझानेके लिये उपदेष्टाको श्रम अधिक करना पड़ता है।

वक्ता। जबतक तुम्हारे संशय दूर न हों, तब तक पूछनेमें संकुचित न होना, मैं यथाशक्ति तुम्हारे संशयोंको दूर करनेकी चेष्टा करूंगा। तुम जिन शिवजीको तत्त्वजिज्ञासु हुई हो, जिन शिवजीकी यथार्थरूपसे पूजा करनेके लिये तुम्हारी अभिलाषा हुई

है, वे ही सबके संशय दूर करते हैं, सिवा उनके और कौन् अज्ञानान्धकारको हटा सकते हैं, रमा ! सिवा उनके हमलोगोंके और कौन् हैं ? जब कुछ समझनेमें न आवे, तब उन्हीको पुकारना, उन्होंका पूछना, 'मेरा संशय मिटा दो' ऐसा कह सरल हृदय से उन्हीं से प्रार्थना करना । तुम्हारे कौनूसे विषयपर संशय अभी मिटे नहीं हैं, सो कहो ।

जिज्ञासु । कलिमें माघ-फाल्गुनकी कृष्णाचतुर्द्दशीकी रात्रिमें शिवजी पृथिवीपर विचरते हैं, उस समय स्थावर-जङ्गम सब लिङ्गोंमें उनका आवेश होता है, रात्रि नवसांख्यक नवति (६ × ६० असुरयुक्ता हैं—इन बातोंका आशय क्या है ? शिवरात्रिमें उपवास और जागरणका इतना प्रभाव क्यों पड़ा है ? तो, फिर 'रात्रि' वास्तवमें कौनसा पदार्थ है ? मेरे इन प्रश्नोंका अब तक समीचीन समाधान हुआ नहीं है । 'व्रत' कौनसा पदार्थ हैं सो भी मैं जानना चाहती हूं ।

वक्ता । अगर इन प्रश्नोंका समीचीन समाधान करना हो, तो काल और कालके अवयव क्षण, मूहूर्त्त, तिथि, पक्ष, अयन, संवत्सर इन सभोंका तत्व जानना होगा । इसमें कोई सन्देह नहीं, कि शुभ हों या अशुभ, जो कोई कर्म्म हो, उसमें कालका कर्त्तृत्व है । ज्योतिष शास्त्रको वेदका नयन कहा गया है । ज्योतिष 'गणित' और 'फलित' के भेदसे दो प्रकारके हैं । फलित ज्योतिषका आदर आजकल बहुत कुछ घट गया है, आधुनिक वैज्ञानिकोंकी दृष्टिमें स्थूल प्रत्यक्ष प्रमाणके अगम्य पदार्थ असत्से ही प्रतीत होते हैं ।

वास्तवमें फलित ज्योतिष शुद्धि विज्ञानका सारतम प्रसव है। 'क्षण' और उसके 'क्रम' पर 'संयम' करनेसे विवेकज ज्ञानका आविर्भाव होता है,—क्या हमलोग निर्णय कर सकते हैं कि ज्ञान-निधि, योगिश्रेष्ठ भगवान् पतञ्जलिदेवकी इस बातका मूल्य कितना है? जब अवनतिका दिन प्रबल होता हैं, तब मनुष्य बिगाड़ बहुत कुछ सकता है, पर बिना कुछ भी नहीं सकता। विशुद्ध फलित ज्योतिष योगकाही स्थूल रूप है। जो गणित-ज्योतिषका फलविज्ञान नहीं जानते, जाननेकी कोशिश भी नहीं करते, उनके गणितका ज्ञान निष्फल है। इसमें सन्देह नहीं, कि जो कोई विज्ञान हो, जो उसके फलविज्ञानका प्रयोजन नहीं समझते, उनका विज्ञानानुशीलन निरर्थक है। पूज्यपाद भृगुदेव योग और ज्योतिषका अपूर्व्व सम्मिलन दिखानेके लिये इस अज्ञानान्धकारसे छाये हुए भारतगगनमें समुज्ज्वल नक्षत्रकी नाईं देदीप्यमान हैं, पर कौन् उनका यथार्थरूपसे अनुसन्धान करता है? ज्योतिष ही वस्तुतः वेदके नयन हैं। यथा-स्थान पर इस विषयकी आलोचना करूंगा कालतत्व विदित होनेसे तुम्हे मालूम होगा, कि किस लिये माघ-फाल्गुनकी कृष्ण-चतुर्द्दशीकी रात्रि शिवजीकी प्रिय हुई है, तब तुम्हारी समझमें आयेगा कि क्यों उक्त चतुर्द्दशीकी रात्रिमें शिवजीकी पूजा करनेसे विशेष फलकी प्राप्ति होती है, तब कुछ परिमाणमें तुम्हारे अनुभवमें आयेगा, कि 'रात्रि' वस्तुतः कौन्सा पदार्थ है, और वेदकी, शास्त्र-की, तथा वेद-शास्त्रज्ञ ऋषि और आचार्य्योंकी जीव पर कितनी कृपा है, तब अवशभावसे 'अहो वेद!' 'अहो वेद!' 'अहो शास्त्र!'

DATE DUE

तुम्हारं मुखसे

क्षण, मुहूर्त,

ं क्या हैं सो

Sambat

९८६२४

AUTHOR शिवराम किङ्कर

TITLE शिवरात्रि

Q23:2291'g"
SHI
1848 Sam.

९८६२४

महेन्द्र संस्कृत विश्वविद्यालय

वाल्मीकि विद्यापीठ

पुस्तकालय